उक्त प्रस्ताव को सुन कर भी मौन हो रहे हो यदि आप अपने पुत्रों को इस कुकर्म से वचने का उपदेश करो तो क्या लज्जा की बात है? । हा ! हा लोभ क्रोधादिक पुरुष के बड़े भारी शत्रु हैं । जो समय पा कर पुरुष के धर्म और शरीर को नष्ट करने वाले होते हैं ।

लोभःक्रोधोभ्यसूयेर्ष्या द्रोहोमोहश्चदेहिनाम् ।
अहीश्चान्योन्यपुरुषा देहंभिन्द्युःपृथग्विधाः ॥

उक्त दुर्गुणों में से एक एक ही पुरुष के शरीर को नष्ट भ्रष्ट कर देता है । शोक है कि इस दुर्घट समय में मेरा कोई भी सहायक नहीं होता ।

प्रतिकूलतामुपगतेहिविधौ ।
विफलत्वमेतिबहुसाधनता ॥

द्रौपदी के इस प्रकार के विलाप को सुन कर जो भीम के चित्त को विदीर्ण कर रहा था केवल भगवान् कृष्णचन्द्र जी के सिवाय किसी ने सहायता नहीं की, भगवान् ने–

यदायदाहिधर्मस्य ग्लानिर्भवतिभारत !
अभ्युत्थानमधर्मस्य तदात्मानंसृजाम्यहम् ॥

इस प्रतिज्ञा के अनुसार वस्त्ररूप से श्रीमती द्रौपदी जी की सभा में रक्षा की–पुरुष जब संसार में दुःख निवृत्ति का कोई आश्रय नहीं देखता और निराश हो कर जब परम प्रभु का आश्रय लेता है तो सद्यः उस के दुःख की निवृत्ति होती है । विचारशील पुरुष लोभ और मोह को संतोषरूपी तेज तलवार की धारा से काट डाले । तदनन्तर उस के लिये सुख का स्रोत खुल जाता है सब ओर से सुख की धारा वहने लग जाती है ॥

संतोषामृततृप्तानां यत्सुखंशान्तचेतसाम् ।
कुतस्तद्धनलुब्धानामितश्चेतश्चधावताम् ॥

सन्तोषरूपी अमृत से तृप्त शान्त चित्तवालों को जो सुख है वह इधर उधर भागने वाले धन के लोभियों को कहां? । धनादि पदार्थ और उन का लोभ किसी दशा में भी परमात्म सुख का सहायक नहीं हो सकता इस में कोई सन्देह नहीं है । जिस समय महर्षि याज्ञवल्क्य संन्यास धारण करने को थे उस समय उन्हों ने अपनी स्त्री मैत्रेयी, और कात्यायनी को बुलाकर कहा कि–

उद्यास्यन्वा अरेऽहमस्मात्स्थानादस्मि हन्त तेऽनया कात्यायन्याऽन्तं करवाणीति ।

हे मैत्रेयी ! मैं इस गृहस्थाश्रम से संन्यासाश्रम में जाना चाहता हूं इस वास्ते मेरे पास जो यह धन है इस को तुझे और कात्यायनी को विभाग करके दे जाता हूं ऐसा नहो कि तुम मेरे पीछे इस धन के कारण विवाद करो।

सा होवाच मैत्रेयी यन्नुम इयम्भगोः सर्वा पृथिवी वित्तेन पूर्णा स्यात्कथं तेनाहममृता स्यामिति ॥

यह सुन कर मैत्रेयी ने उत्तर दिया कि हे भगवन्! यदि यह सम्पूर्ण पृथिवी धन से भरजाय तो मैं उस धन को पाकर अमृत हो सकती हूं या नहीं?।

नेतिनेति होवाच याज्ञवल्क्यः ।

याज्ञवल्क्य बोले कि हेप्रिये तू धन से अमृत नहीं हो सकती किन्तु—

यथैवोपकरणवतां जीवितं तथैव ते जीवितꣳ स्यादमृतत्वस्य तु नाशास्ति वित्तेन ॥

हे प्रिये! जिस प्रकार दूसरे धनी लोगों का जीवन व्यतीत होता है उसी प्रकार तेरा भी जीवन व्यतीत होगा धन से अमृत मोक्ष होने की आशा नहीं, ॥

सा होवाच मैत्रेयी येनाहं नामृतास्यां किमहं कुर्य्यां यदेव भगवान्वेद तदेव मे ब्रूहीति ।

मैत्रेयी ने याज्ञवल्क्य जी से कहा कि हे भगवन्! जिस धन से अमृत नहीं हूंगी उस धन को ले कर मैं क्या करूंगी जो आप जानते हैं उसी का उपदेश मुझे कीजिये तब याज्ञवल्क्य जी ने अपनी स्त्री को योग्य समझ कर आत्मा का उपदेश किया—

स होवाच नवा अरे पत्युः कामाय पतिः प्रियो भवत्यात्मनस्तु कामाय पतिः प्रियो भवति । नवा अरे जायायै कामाय जाया प्रिया भवति आत्मनस्तु कामाय जाया प्रिया भवति । नवा अरे पुत्राणां कामाय पुत्राः प्रिया भवन्त्यात्मनस्तु कामाय पुत्राः प्रिया भवन्ति। नवाअरे वित्तस्य कामाय वित्तं प्रियं भवत्यात्मनस्तु कामाय वित्तं प्रियं भवति॥

महर्षि याज्ञवल्क्य ने कहा कि हे मैत्रेयी स्त्री को पति, पति की कामना के लिये प्यारा नहीं होता बल्कि अपनी कामना के वास्ते स्त्री को भर्ता प्यारा होता है । यदि स्त्री की कामना अपने पति से पूरी नहीं होती

है तो वह अपने पति से प्रेम नहीं करती, स्त्री स्त्री के प्रयोजन के वास्ते पुरुष को प्यारी नहीं होती किन्तु अपने प्रयोजन के लिये प्यारी होती है अगर वह पुरुष के आत्मा के अनुकूल आचरण नहीं करती तो आत्मा उस से प्यार नहीं करता, हे मैत्रेयि! पुत्रों की कामना के वास्ते मनुष्य को पुत्र प्यारे नहीं वस्तुतः आत्म कामना के वास्ते पुत्र जगत् में प्यारे होते हैं। जहां पुत्र अपने आत्मा के प्रतिकूल आचरण करता है वहां ही द्वेष बुद्धि प्रकट होजाती है, धन के लिये धन प्यारा नहीं अपितु आत्म कामना के वास्ते पुरुष को धन प्यारा है। हे मैत्रेयि आत्मा स्वप्रिय है।

स यथा सर्वासामपाᳪं समुद्रएकायनमेवᳪं सर्वेषाᳪं स्पर्शानां त्वगेकायनमेवᳪं सर्वेषां रसानां जिह्वैकायनमेवं सर्वेषां गन्धानां नासिकैकायनमेवं सर्वेषां वेदानां वागेकायनम्। स यथा सैन्धवघनोऽनन्तरोऽबाह्यः कृत्स्नो रसघनएवैवंवा अरेऽयमात्माऽनन्तरोऽबाह्यः॥

जिस प्रकार सब जलों का समुद्र परमस्थान है और सब स्पर्शों की त्वचा सब रसों की जिह्वा और सब गन्धों की नासिका तथा सब वेदों की वाणी एक अयन है एवं आत्मा सब वस्तुओं के अन्तर और बाह्य में जल में मिले हुए लवण के तुल्य रसरूप एक अविनाशी सब का एक अयन विद्यमान है, उस का साक्षात्कार करना मनुष्य का परमकर्त्तव्य कर्म है॥

आत्मा वा अरे द्रष्टव्यः श्रोतव्यो मन्तव्यो निदिध्यासितव्यो मैत्रेय्यात्मनो वा अरे दर्शनेन श्रवणेन मत्या विज्ञानेनेदᳪं सर्वं विदितम्॥

हे मैत्रेयि! आत्मा देखने योग्य है, श्रवण मनन और निदिध्यासन करने के योग्य है आत्मा के दर्शन, श्रवण, मनन, और विज्ञान से जो कुछ संसार के अन्दर सारासार वस्तु है सब कुछ भलीभान्त विदित होजाता है जैसे कहा भी है—

भिद्यतेहृदयग्रन्थिश्छिद्यन्तेसर्वसंशयाः।
क्षीयन्तेचास्यकर्माणि तस्मिन्दृष्टेपरावरे॥

तुलाराम शास्त्री एच; एम; हाईस्कूल
अम्बाला छावनी

॥ श्रीराधामानविवर्द्धनाभ्यां नमः ॥

—मथुरा की दो तीन बातैं—

१—मथुरा की उन्नति के मैदान में सरपट दौड़ते देखकर कुछ आर्यसमाजियों के जी में हरबड़ीसी पड़ी। आगरे के साप्ताहिकपत्र "आर्य्यमित्र" द्वारा उन के विचारों की सरसराहट सुनाई देने लगी है, कोई सज्जन बी०ऐन० शर्मा—कोई सज्जन ऐन०के०शर्मा कोई गण ऐस०ऐल० लिखकर पण्डित सभा पर आक्षेप करने लगे।

अहह क्या कहूं काल की कौशलता को, बस मौन ही तो साधना है। जो कि ऋषि महर्षियों की सन्तान होकर के भी अपना नाम ठीक ठीक न लिखकर राज्य भाषा के शब्दों में लिख २ लेख छपाने लगे शर्मापन का पुछल्ला लगाकर अपने को विद्वान् समझने लगे। किसी सज्जन को पूरी अंग्रेजी याद भी नहीं याद हो कहां से ७ मी क्लाश फेल, मिडिल फेल, संस्कृत से अनभिज्ञ, काला अक्षर भैंस बराबर, वेदों की डींग हांकते हैं। आप लिखते हैं बालविधवा विवाह शास्त्र सम्मत क्यों नहीं? उसका यहां के व्रजमण्डल और पण्डित सभा ने मुंह तोड़ खण्डन किया—संस्कृत में मुखमर्दन उत्तर छपा दिया—इस बात को प्रायः विद्वान् लोग भली भांति जानते हैं कि आज कल के आर्यसमाजी जिस चालबाजी और अपनी कुटिल गति से बाल विधवा विवाह शास्त्रसम्मत अवश्य है लिखते हैं—भूत वही जो शिर चढ़ बोले। छन्द विचार आदि कुछ न हो और फिर कविता हो यही तो मजा है। गंग की गैल में गीत मदारन के लागी गावान—पर कुछ आश्चर्य न करो विना घोड़ा आदि जोड़े गाड़ी चलने लगी विना तार का तार चल निकला क्योंकि स्वामी जी लिख चुके "तरुतारम्" वेद का मन्त्र है चाहे पढ़े हो या न पढ़े हो परञ्च (बाबा वाक्यं प्रमाणम्) आप लिखते हैं "साचेदक्षतयोनिस्स्यात्" का अर्थ हिन्दी बङ्गवासी अपनी उपहार में बांटी हुई मनुस्मृति में इस प्रकार से करता है उन को पाण्डित्य का अभिमान तो है पर आप ने अर्थ को मन में न विचार कर बङ्गवासी की शरण ली कोरे निरक्षर भट्टाचार्य्य निकले। आर्य समाजी दान त्यागी जी लिखते हैं हमने दान त्याग दिया, हम कहते हैं आप ने ब्राह्मणत्व का कुछ अंश ही त्याग दिया—त्याग नहीं त्याज शब्द है पर व्याकरण न पढ़ कर त्यागी लिखते हैं। तो भी मन मानी बनाकर मूर्खमण्डली में अपनी जय मान बैठते और फूले अंगों नहीं

समाते अर्थात् मुख में बीड़ा दबाकर उछल २ नाना भांति व्याख्यान " मुण्डे मुण्डेच " कर चीखते हैं परन्तु " अति सर्वत्र वर्ज्जयेत् " इस महावाक्य के अनुसार इन की गति मति विपरीत हुई " कालस्य कुटिलागतिः " सत्य के आगे सब चालबाजी भूल गये आप लिखते हैं " सत्यमेव जयते " ऐसा पद कभी नहीं बनता "ऐसा लिखते तो ठीक होता सत्यमेव जयति„ फिर सच है।

" विनाशकालेविपरीतबुद्धिः „

२—गत कार्त्तिक मार्गशिर की पताका में पण्डित सभा का एक लेख लम्बा चौड़ा निकला उस में पण्डित परमकिशोर जी अपनी लेखनी से लिखते हैं कि पण्डित सभा के मन्त्रि वर पाठक दयाशंकर को मथुरामात्र के पण्डितों ने मिल कर मन्त्रि पद दिया है ऐसा लिखना कदापि योग्य न था क्यों कि दयाशंकर जी को मथुरा मात्र के पण्डितों ने मिलकर कभी भी यह पद नहीं दिया आपने अपने ४ या ५ सभ्यों ने मिलकर मन्त्री चुन लिया है इस तरह की निर्मूल बात अपनी लेखनी से लिखने में ज़रा भी भय न हुआ, कोई कार्यवाही ठीक २ तरह पर पण्डितों से पूछते नहीं मन में आया सो किया कहने वाला कौन हम पण्डितसभा के सभ्यों से प्रार्थना करते हैं कि इस तरह के लेख न छपाया करें (मूलं नास्ति कुतः शाखा)

(अकीर्तिर्वातस्य प्रकटित दशास्त्वेवकिमिति)

३—मथुरा की शुभचिन्तक विद्याविनोदकरी सभा का पंचम वार्षिक समाप्त हुआ—भारतवर्ष में अनेकों सभायें प्रकट होती जाती हैं परंच उन्नति किसी से भी नहीं दीखती तो भी कुछ लिखे विना रहा नहीं जाता, इस सभा में किसी के ऊपर व्यक्ति गत आक्षेप न होगा ठीक। पर मन्त्री जी से पूछना चाहिये कि आपके प्रोग्राम में विधवा विवाह खण्डन लिखा नहीं था तो आपने अपने शु० उपदेशकों से श्रीराधाचरण जी के सन्मुख खण्डन क्यों कराया। एक शास्त्री ने रंगे स्यार तक कह गेरा तब निषेध क्यों न किया। और जब तुम्हारे उपदेशक ने शंकरमत का खण्डन किया तब उन को क्यों न रोका गया, फिर शंकरमत के प्रतिपादन को एक संन्यासी जिज्ञासाभाव से कहने को उपस्थित हुआ तो मन्त्री ने कहा कि सभा का नियम है कि किसी का खण्डन मण्डन न किया जाय पर मन्त्री महाशय पूछने का अनुरोध करते हैं कि जब गो० राधाचरण जी विधवा विवाह के पक्षपाती हैं तो उन्हें सन्मुख होकर खण्डन करना ये नियम कौनसा क्या य-

ही नियम है " कुदेशेपिजायन्ते क्वचित्केचिन्महाशयाः „ इतना ही लिखकर विद्याविनोदकरी सभा को धन्यवाद देकर कहना पड़ता है कि आयन्दा को नियम के पास में बंधकर चलना चाहिये नियम से विरुद्ध कोई कार्य न होना चाहिये संन्यासी को व्याख्यान से रोक कर तिरस्कार करना ये विद्वानों का काम नहीं है „नहि कल्याणकृत्कश्चिद्दुर्गतिंतात गच्छति–"पर उपदेश कुशल बहुतेरे " की कहावत को चरितार्थ किया ॥ ३ ॥

नवीन आर्यसमाज के १० नियमों का खण्डन ॥

अर्थात् इन १० नियमों से आर्य्य धर्म्म पुस्तकों का खण्डन होता है या यों मानलो कि आर्य्य धर्म पुस्तकों से इन १० नियम का खण्डन होता है ॥

प्रिय विचार शीलो ! विचार की बात है हरेक का सिद्धान्त आभ्यन्तर के अनुसार हुआ करता है किन्तु दयानन्द का विचार इस के विपरीत प्रतीत होता है जो नीचे उनका विचार प्रत्येक नियम से प्रकाशित किया जाता है। किसी ने सच कहा है कि "खोवत कपट प्रतीत को, लोभ नशावे नेह ।" चुनांचे इस अभिप्राय को स्वामी द० स० जी ने पूर्ण किया * ९९९ मत का हार्दिक सत्य और शुद्धान्तःकरण से विचार है कि सत् का व्यवहार हर हालतों में उपयोगी हुआ करता है सो लेकिन दयानन्द का विचार ऊपरी दशा से तो ऐसा ही है किन्तु अभ्यन्तर में उलटा है । दयानन्द का प्रयोजन यही था जो कह दिया जाये कि झूठ का वर्त्ताव व व्यवहार भला नहीं तो हमारी चाह कोन करेगा अर्थात् सब झूठ वाले होजांय तो हमारे कपट को समझ न जायं इस वास्ते सत्य की ओट में होके (बहकाके लोगों को धोखा दिया है) आप लोग आशा है कि विचार करेंगे ॥

(१) नियम–सब सत्य विद्या और जो पदार्थ विद्या से जाने जातेहैं उन का आदिमूल ईश्वर है ॥

(१ विचार) स० प्र० पृ० २११ ॥ अगर ईश्वर ऐसा होता तो ईश्वर अज्ञानी न होता स० प्र० २११ में लिखा है कि ईश्वर ने अनादि जीवं रूप प्रजा के

*स० प्र० पृ० ३८९ में ९९९ सम्प्रदायों को दयानन्द ने झूठा व भडुआ लिखा ९९९ मत में ही हमारे भी पूर्व पुरुषा थे जिसमें हम हैं (९९९) मतकी नामावली नहीं लिखी अत एव हिन्दू, यवन, ईसाई, जैनादि भडुआ पंथी हुये ॥ द्वितीय यह भी बताइये कि विद्यायें कितनी हैं जिन को ईश्वर ने सीखा ?

हेतु परमात्मा ने हरएक विद्या का बोध वेदों से किया। क्या ईश्वर इससे एक देशी नहीं? और इस नियम के विरुद्ध?

(२ नियम) ईश्वर निराकार अजन्मा सर्वान्तरयामी है। आदि

(२ विचार) अगर ईश्वर ऐसा होता तो ४ ऋषियों द्वारा वेदोत्पत्ति न कराता क्यों कि ईश्वर उन ४ ऋषियों से भी महापवित्र था पुनः जिस सामर्थ्य से सृष्टि नियत कियी उस सामर्थ्य के भिन्न ये कार्य्य हैं द्वितीय स० प्र० पृष्ट १९५ में लिखा ईश्वर त्रिकालदर्शी नहीं जो ईश्वर को त्रिकाल दर्शी कहना मूर्खता है (ऋग्वेदादि भाष्य भूमिका पृष्ट ७६ में ईश्वर को दयानन्द ने त्रिकाल दर्शी लिखा सो दयानन्द से बढ़ के मूर्ख दूसरा कौन होगा) क्यों कि जो होकर न रहे वह भूतकाल और न होकर होवे वह भविष्यत्काल कहाता क्या ईश्वर को कोई ज्ञान होके नहीं रहता? तथा न होके होता है? इस से वह त्रिकालदर्शी नहीं और ऋग्वेदादि भा० भूमिका में लिखा है कि ईश्वर त्रिकालज्ञ है अतएव सत्यार्थप्रकाश के सिद्धान्त से ईश्वर निराकार न होके आर्य्यसमाज के २ नियम को दयानन्द ने मिथ्या ठहराया (वही कर्त्ता वही नाशक?)

(३ नियम) वेद सत्य विद्याओं का पुस्तक है इससे वेद का पढ़ना पढ़ाना आर्य्यों का परमधर्म है॥

(३ विचार) अगर आर्य्य वेदों को ऐसा ही मानते तो आज वेद कई वार छपे होते और आर्य्यों के घर २ में वेद होते सोतो न होके घर २ दयानन्द के पुस्तक हैं जो कई वार छप चुके हैं लोगों को धोखा देकर दयानन्द अपने विचार को ही वेद बता रहे हैं जब चाहते तो वेद बना भी लेते थे (स० प्र० पृ० २२४ में देखो ततो मनुष्या अजायन्त (और) मनुष्या ऋषयश्च ये) ये मन्त्र वेदों में कहां हैं अगर बनाए नहीं तो?) इस से दयानन्द को ही निराकार और वेद वक्ता आर्य्यों ने भी माना है यदि नहीं, वेद कोई दूसरे को माना है तो ये मन्त्र वेदों में दिखाओ॥

नियम (४) सत्य के ग्रहण करने और असत्य को त्यागने में सदा तत्पर रहना चाहिये॥

(४ विचार) स० प्र० में उपरोक्त मन्त्रों को सत्य ठहराओ स० प्र० पृ० १०० में मरीच्यादि को ब्रह्माका पौत्र लिखा पुनः, पृ० ३३१ में पुत्र, दो में से १ ठौर हरताल फेरो सत्य की शपथ से या ४ नियम को आर्य्य समाज से खारिज कर भट्टी में झोंक दो या सत्यार्थ प्रकाश को। पुनः (स० प्र० पृ० ११९ वध्याष्टमेऽधि०)

यह श्लोक नियोग प्रसंग में नहीं मनुस्मृति में है। बल्कि पुरुष स्त्री से आज्ञा लेकर पुनः विवाह करे सो दयानन्द के लिखे हुये पर हरताल फेरो और पुरुष को विवाह की आज्ञा लिखी नहीं नियम को मिथ्या मानना होगा (दयानन्द के नियम बनाये दयानन्द के पुस्तक बनाये परस्पर में कौन झूठे कौन सच्चे सच्च तो कहैं)

(नियम ५) सब काम धर्म्मानुसार सत्य और असत्य को विचार के करना चाहिये॥

(विचार ५) यजुर्वेद देखो पशु वध या आगे दयानन्दी भाष्य से बैल से भोग ईश्वर की गुदा से अन्धे सांप पैदा होना फिर गौमेध नरमेध इसी मुंह से खण्डन करते शर्म नहीं आती ये काम धर्म व विचार के हैं और गर्भ वती स्त्री से प्रसंग करना भी धर्म है ?॥

(नियम ६) संसार का उपकार करना इस समाज का मुख्य उद्देश्य है (समाजोन्नति वगैरह)

(विचार ६) प्रत्येक जाति मात्र को अपनी जातिमें मिलाना यों है जैसे खरबूजा पर छुरी गिरे तो खरबूजा कटे और खरबूजा छुरी पे गिरे तौभी खर बूजा कटै प्रत्येक संस्कार द्विजों के गर्भ से होते वो मिलने वाले में न पाकर अपने ही को नष्ट करना है। पुनः यज्ञोपवीत ८,११,१३, वो १६,२२, २४, वर्ष में है सो न ख्याल कर विशेष उमर रखने वाला पुरुष द्विजाति दाखिल नहीं हो सकता फिर किस वर्ण का मान के विधर्म्मी को द्विजाति में मिलाते हो इस से ये नियम भी रद्द रहा॥

(नियम ७) सब से प्रीति पूर्वक धर्म्मानुसार यथा योग्य वर्त्तना चाहिये। (विचार ७) देखिये १० नियमकर्त्ता के कपट को कैसी प्रीति करता है इसी प्रीति के प्रताप से आर्यधर्म कड़ुआ नीम हो रहा है (स० प्र० पृष्ठ ३३१ व ३३२) पौराणिक मूढ़ पृ० ७७ गर्दभी पृ० ३२४ मथुरा के चौबे कलुआ बन्दर-३३१ पोप भागवत बनाने हारा अन्धा पृ० ३६० रामसनेही को रांडसनेही (रांड सनेही तो आर्यों को लिखना ठीक था जहां १ औरत को ११ पति करना लिखा सो उलटा लिखा है रांड सनेही तो खुद था) फिर पृ० ३४० जो जैसा होता है वह दूसरे को भी वैसा ही मानता है ॥ अब इस लेख से दयानन्द को ही रांडसनेही, पोप, गप्पी, भंगेड़ी, अफ़ीमची, अन्धा कह सकते हैं इन नियमों से जाना जाता है कि ये नियम आर्यसमाज के नहीं न दयानन्द के बनाये हैं जहां पुराणों की भांति विरोध प्रत्यक्ष है दयानन्दी गण १० नियमों को

आर्यसमाज का तत्व मानते हैं परन्तु विद्वान् लोग इन नियमों से ही दयानन्दी मत का प्रयोजन जानके उनके फंदे में न फसेंगे (जो गारी देगा सो गारी पावेगा ऐसा दर्शित है)

(नियम ८) अविद्या का नाश और विद्या की उन्नति करनी चाहिये।

(विचार ८) जिसका प्रवेश आर्यसमाज में हो गया है वह इन नियमों के विचारानुसार और दयानन्द की शिक्षा से ७ जन्म पर्यन्त क्या विद्या की उन्नति कर सक्ता है?

(नियम ९) प्रत्येक को अपनी ही उन्नति में सन्तुष्ट न रहना चाहिये किन्तु सबकी उन्नति में अपनी उन्नति माननी चाहिये॥

(विचार ९) ऐसा कपटी इस संसार में क्या बार २ होगा? ऐसे को संन्यासी तो नहीं संडासी कहना उचित है देखो स० प० पृष्ठ ३८९ में ९९९ मतवालों को भडुआ व झूठा दूकानदार लिखा है अपने धर्म की भी प्रशंसा करी इससे दयानन्दी पन्थ भी भडुआ,पापी, झूठा,हुआ सोचना ये है कि जो आर्यसमाजी होगा वह अपने पूर्व,पुरुषाओं को झूठा दूकानदार व भडुआ ठहरा के आर्य बनेगा, अफ़सोस है। अपने मा बाप को भडुआ ठहरावे फिर भडुओं के भडुआ ही होते हैं गेहूं से गेहूं। इससे अधिक शर्म की बात हिन्दू सन्तानों को क्या होगी कि तुम आर्य होकर अपने पुरुषाओं को भडुआ बनादो इससे आर्य न होना ही श्रेष्ठ है। पर पन्थ सदा कंटक की भांति दुखदाई होता है (आर्यों को भडुआपन्थी कहने का प्रस्ताव होना चाहिये)

(१० नियम) सामाजिक सर्वहितकारी नियम पालने में परतंत्र और प्रत्येक हितकारी नियम पालने में सब को स्वतंत्र रहना चाहिये।

(१० विचार) इस १०वें नियम की आज्ञा पालन कर दयानन्द कृत-ग्रथों की शुद्धि होनी चाहिये और वैमनस्य द्वेषभाव को निवृत्तिकर-ग्रन्थ पवित्र करना चाहिये जिससे आर्य समाज के १० नियम ठीक होने में आर्य-समाज को लज्जित होने न पड़े यही हमारा अन्तिम निवेदन है। तथा दश नियमों से दयानन्द का छल कपट दर्शित किया गया जो लोग फंसते हैं समाजियों के फन्दे में वो १० नियम को देख के। ये १० नियम इन्द्रायण के फल हैं और वास्तव में ये समाज के नियम नहीं अगर दयानन्द कृत १० नियम होते तो दयानन्दी ग्रन्थ भी १० नियमों के अनुसार होते इससे ये नियम सदा से सनातन ग्रन्थ के हैं जैसे सत बोलना सनातन धर्म का मत है इसी भांति अगर सत के हक़दार और सत्य को अच्छा मानने हारा दयानन्दी (आर्य्य मत)

होता तो उसमें द्वेष भरी झूठी बातें न होतीं अब जो कोई धींग धांग से इस लेख का उत्तर देवे वो मेरे पास लेख भेज देवे जिससे मैं उसके समाधान के वास्ते उत्तर दे सकूं दयानन्द के विचार को वही जान सक्ता है जिसमें पक्षपात नहीं और विद्या भी है। दयानन्दी ग्रन्थों को झूठा सच्चा वही पहिचान सक्ता है जो दयानन्द के दिये हुए प्रमाणों को प्रामाणिक पुस्तकों से मिलाकर देखता है॥ दयानन्द को ग्रन्थ लिखते वक्त ये ध्यान न हुआ कि हमारे प्रमाणों को कभी कोई देखेगा मालूम होता तो ऐसा धोखा न देते अपनी नामवरी और प्रतिष्ठा बढ़ाने के हेतु ही उन्हों ने ऐसा किया। एवं० दयानन्दी सम्प्रदाय के लोग कोई तो नौकरी की इच्छा से इस पन्थ को नहीं छोड़ते कोई अविद्या के वश हो जाहिली को नहीं छोड़ते। कोई काहिली सुस्ती के वशीभूत हो इस पन्थ में पड़े हैं कि सनातन पन्थ में दान पुण्य पूजा पाठ शुचि करना होगा। क्रमशः।

नोट। एतत्० संबन्धी लेख और ये लेख आर्य्यसमाज के वार्षिक उत्सव में कार्तिक शु० ११ को पं० नन्दकिशोर देव श० व स्वामी नित्यानन्द सरस्वती जी के पास भेजे गये उत्तर किसी ने न दिया।

(२) इस उत्सव के वाद २ दिवस सनातन धर्म स० का जलसा हुआ जिससे आर्यसमाजी होते हुए लोग बचे। पं० गणेशदत्तशास्त्री जी के और पं० दामोदरदासशास्त्री जी के व्याख्यान सुन श्रोतागण तृप्त हुए। अन्तिम परिणाम यह हुआ कि यहां सनातनधर्मसभा का भवन न था तत्काल में भवन को स्थान दान मिला और बात की बात में क़रीब ३०००) के रु० चन्दा होगया अब आर्यसमाज के निकट सनातनधर्मसभा का भवन चन्द्रमा की भांति दिनों दिन तैयार हो रहा है॥ और सनातनधर्मसभा के मन्त्री चन्दा वसूल कर रहे हैं। इति

पं० तुलसीराम श० क़न्नौज

"एक न शुद दो शुद"

प्रिय पाठकवृन्द! आप को विदित है कि पहिले स्वामीदयानन्दजी ने व्याकरण से अनभिज्ञता तथा बुद्धि की न्यूनता के कारण "पतिमेकादशंकृधि" इस श्रुति को हाथ में लेकर स्त्रियों के पातिव्रत धर्म्म को मिटाकर भारतवर्ष का सत्यानाश कराया है अर्थात् एक स्त्री को ग्यारह २ पति करने की आज्ञा अपने सत्यार्थप्रकाश में लिखी है अब उन के पीछे उन के शिष्य अपने गुरू

घंटाल के वाक्यों को पुष्ट करने के हेतु अज्ञान की पट्टी को अपनी आंखों पर बांध पक्षपात को हृदय में धारण कर धर्म्म को तिलाञ्जली दे एक स्त्री को २१ पति तक विवाह करने की आज्ञा दिखलाते हैं वेदप्रकाश भा० ९ मासांक ११ पृ० २२१ में स्वामी तुलसीराम जी लिखते हैं कि पद्मपुराण में प्रमाण है कि दिवोदास की लड़की सुशीला के २१ पति से विवाह हुए अतएव जो स्वामी दयानन्द लिख गये हैं वह सब ठीक है जब पुराणों में २१ पति तक लिखा है तो सनातनी भाइयों को स्वा० द० पर आक्षेप तथा एक स्त्री को ११ किन्तु २१ पति तक विवाह के वास्ते आग्रह न करना चाहिये।

समाधान–किसी ने सच कहा है कि "जैसे उदई तैसे भान न उन की चोटी न उन के कान" अर्थात् जैसे गुरू थे वैसे ही चेला भी निकले जब गुरु अनर्थ कर गये तो चेले क्यों न करेंगे। हा! शोक जैसे स्वा० द० स्पष्ट अर्थों को छुपाकर अर्थ का अनर्थ कर गये "पतिमेकादशं" जिसका स्पष्ट अर्थ यह है कि ग्यारहवां पति को जान उस को छिपाकर ११ पति तक विवाह करे ऐसा लिख मारा इसी प्रकार तु० रा० ने भी विना सोचे समझे लिख मारा है कि २१ पति किये। तु० रा० जी जरा शास्त्रों की तर्फ दृष्टि डालिये और बुद्धि को भी हाथ में लीजिये फिर देखिये आपके लेख से क्या मतलब निकलता है जिस प्रकार सुशीला के २१ विवाह हुए हैं उस प्रकार विवाह करने की आज्ञा शास्त्रों में लिखी है परन्तु जिस तरह आप विधवा विवाह मानते हैं उस विवाह की आज्ञा शास्त्रों में नहीं लिखी है अब मैं स्पष्ट करके लिखता हूं जरा ध्यान पूर्वक पढ़ना और सोचना। जब तक कन्या का पति से पाणिग्रहण और सप्तपदी क्रिया न हो जावे तब तक पति के मर जाने, संन्यास लेने, विदेश में चले जाने, क्लीव निकलने आदि कारणों से कन्या का दूसरा विवाह हो सक्ता है जब पाणिग्रहण तथा सप्तपदी क्रिया होजावे उस वक्त चाहे पति से संग हुआ हो चाहे न हुआ हो फिर विवाह कभी नहीं होसकता है। प्रमाण देखो–

नष्टेमृतेप्रव्रजिते क्लीवेचपतितेपतौ।
पञ्चस्वापत्सुनारीणां पतिरन्योविधीयते ॥१॥

इस श्लोक में पति शब्द में नञ् समास है अर्थात् वाग्दान हो गया हो, पाणिग्रहण न हुआ हो, पति मरजावे तो दूसरा पति हो सक्ता है यदि यहां नञ् समास न होता तो "पत्यौ होना चाहिये था देखो व्याकरण—

टीकायां स्पष्टीकृतम्—वाग्दानानन्तरं पाणिग्रहणात्प्राक्पतौउत्पत्स्यमानपतित्ववति पूर्वस्मिन् वरे नष्टे, मृते, प्रव्रजिते क्लीबे वा सति एवं विधासु आपत्सु नारीणां कन्यानामन्यः पतिर्विधीयते ॥ यदाह वसिष्ठः—

अद्भिर्वाचाचदत्तायां म्रियेतादौवरोयदि ।
नचमन्त्रोपनीतास्यात् कुमारीपितुरेवसा ॥१॥
नोदकेननवाचाच कन्यायाःपतिरुच्यते ॥
पाणिग्रहणसंस्कारात् पतित्वंसप्तमेपदे ॥ २ ॥

मनुरपि—पाणिग्रहणिकामन्त्रा नियतंदारलक्षणम् ॥
तेषांनिष्ठातुविज्ञेया विद्वद्भिःसप्तमेपदे ॥ ३ ॥
पाणिग्रहणिकामन्त्राः कन्यास्वेवप्रतिष्ठिताः ॥
नाकन्यासुक्वचिन्नृणां लुप्तधर्मक्रियाहिताः ॥ ४ ॥
अन्यदत्तातुयाकन्या पुनरन्यस्यदीयते ।
तस्यान्नंनैवभोक्तव्यं पुनर्भूःसाप्रगीयते ॥ ५ ॥

तु० रा० जी टुक इधर भी एक आंख द्वारा ध्यान दीजिये इन्हीं प्रमाणों से सुशीला का भी २१ पति तक विवाह कराया गया था परन्तु प्रारब्ध मुख्य है दैवेच्छा से फ़िर भी वह क्वारी रही क्वारी ही सुशीला का बार बार २१ पति तक विवाह हुआ है न कि विवाहिता का उस सुशीला का क्वारापन आपही के प्रमाणों से सिद्ध है ज़रा देखो तो सही क्या लिखा है ॥

तस्याविवाहयज्ञस्य सम्प्राप्तेसमयेनृपः ।
मृतोसौचित्रसेनस्तु कालधर्म्मेणवैकिल ॥ १ ॥
अस्याविवाहकालेतु चित्रसेनोदिवंगतः ।
अस्यास्तुकीदृशंकर्म भविष्यंतद्ब्रुवन्तुमे ॥ २ ॥
मृत्युधर्म्मंगतोराजा विवाहस्यसमीपतः ।
यदायदामहाभागो दिव्यादेव्याश्चभूमिपः ॥ ३ ॥
चक्रेविवाहंतद्भर्त्ता म्रियतेलग्नकालतः ॥

ऊपर के श्लोकों से स्पष्ट सिद्ध है कि सुशीला का पाणिग्रहण सप्तपदी कार्य किसी भर्त्ता से भी नहीं हुआ था इस क्रिया के होने से पूर्व ही उस के पति मरते गये तब सुशीला का पुनः २ विवाह होना योग्य तथा शास्त्रानुकूल था आप का विधवा विवाह श्रुति तथा स्मृति दोनों के विरुद्ध है देखो—

कामंतुक्षपयेद्देहं पुष्पमूलफलैश्शुभैः ।
नतुनामापिगृह्णीयात् पत्यौप्रेतेपरस्यतु ॥ १ ॥
सहानुगमनंकुर्यात् कुर्याद्वानैष्ठिकंव्रतम् ॥
अयंधर्म्मःस्त्रियाःप्रोक्तः कलौकालेविशेषतः
एकएवपतिर्नार्या याज्जीवंपरायणम् ॥ २ ॥
मृतेजीवति वा तस्मिन् नापरंप्राप्नुयात्पतिम् ॥
मृतेभर्त्तरिसाध्वीस्त्री ब्रह्मचर्येव्यवस्थिता ॥ ३ ॥
स्वर्गंगच्छत्यपुत्रापि यथातेब्रह्मचारिणः ॥
नान्यस्मिन्विधवानारी नियोक्तव्याद्विजातिभिः ॥
अन्यस्मिन्हिवियुञ्जाना धर्म्मंहन्युःसनातनम् ॥४॥

और भी बहुत से प्रमाण हैं जो विस्तर भय से नहीं लिखते हैं आगे चलकर तु० रा० लिखते हैं कि—आर्य्यसमाज कैसे उपकार के काम कर रहा है जैसे अनाथालयादि का स्थापन करना। महाशय जी यह तो वही बात है कि " अन्धा बांटे रेवड़ी फिर २ अपने ही को दे। „ आप का उपकार क्या है उलटा बिगाड़ है जो अनाथ आप के हाथ में आफंसा वश झट उसको आर्य्य समाज की शिक्षा दे विधर्म्मी बना अनाथ का पालन किया हुआ आपका भाई बढ़ा समाज की उन्नति हुई अनाथों का पालन हम तब समझें कि हम यहां अनाथालय खोलें उस में सनातन धर्म्मानुकूल उन अनाथों को शिक्षादि दें आर्य्यसमाजी मत का कुछ हस्तक्षेप उस में न हो उस समय आप की आर्य्यसमाज खर्च दे तब हम जानें कि हां आर्य्यसमाजी अनाथों का पालन करते हैं अन्यथा नहीं वैसे तो ईसाई मुसलमान भी अपने संयुक्त करने के हेतु रुपया वगैरः देते हैं आप की इसमें अधिकता क्या है? यह भारत को सुधारना नहीं किन्तु गारत करना है किंबहुनाविज्ञेषु ॥

रघुनाथदत्त शर्मा मुलतान

शुभ समाचार (आवसथ्याधान)

सकल शास्त्र कदम्बक से यही निश्चय होता है कि धर्म ही मनुष्यों के आभ्युदयिक तथा निःश्रेयस का असाधारण कारण है। वह धर्म पूर्व सत्ययुग में चतुष्पाद रूप से अवस्थित था त्रेता में तीन पाद तथा द्वापर में २ पाद तथा कालचक्र के चक्रवत् स्वाभाविक परिवर्त्तन के कारण आज वह धर्म एक पाद से स्थित भी बड़े प्रबल पाप से नितान्त आक्रान्त वसुन्धरा को धारण कर रहा है। जिस प्रकार अंशुमाली भगवान् सवितृदेव का अन्तर्धान होना ही अन्धकार रात्रि और उदय होना ही दिन कहा जाता है। एवं धर्म का उदय ही चराचर सृष्टि का स्थापक और अभाव ही प्रलय स्वरूप है। धर्म की मीमांसा करते हुये शास्त्रकारों ने "चोदनालक्षणोर्थो धर्मः" को ही धर्म का प्रधान स्वरूप वतलाया है। वह कर्मचोदना श्रौतस्मार्त्त पौराणिक भेद से १ ही तीन रूप में अवस्थित है। उन में से पौराणिक कृत्य तो यत्र तत्र यथा तथा हो भी रहा है पर श्रौत स्मार्त्त कर्मों का अभाव सा प्रतीत होता है इस विषम दशा में उन अन्तिम दुःखहारी भगवान् देव देवेश की कृपा से आज हम स्मार्त्त कर्म का भी प्रादुर्भाव देखते हैं। वदायूं प्रान्तान्तर्गत १ हजरत गंज ग्राम है उस में ठाकुर लायकसिंह जी ने १ संस्कृत पाठशाला स्थापित कर रक्खी है उक्त ठाकुर साहब बड़े श्रद्धालु हैं जो ऐसे समय में अपने सन्तानों को संस्कृत शिक्षा का पात्र बना रहे हैं। उक्त पाठशाला के अध्यापक पं० रामदयालु शर्मा जी हैं उक्त पं० जी बड़े ही धर्म के प्रेमी हैं। जब से ब्राह्मणसर्वस्व के सम्पादक पण्डितवर भीमसेन शर्मा जी द्वारा श्रौत स्मार्त्तधर्म का उपदेश और पद्धतियों का मुद्रित होना आदिक धर्मान्दोलन भक्तजनों के नेत्र प्रसार में आया तब से ही उक्त पं० रा० द० जी का विचार स्मार्त्त अग्न्याधान करने का था पर 'श्रेयांसि बहुविघ्नानि' के अनुसार कुछ दिनों तक विघ्नादिक होते रहे पर उत्तम जन जिसका विचार करलेते हैं उसे पूरा ही करके छोड़ते हैं। इसके अनुसार वैशाख शुक्ला द्वितीया बुधवार को उक्त पं० जी का मनोरथ सिद्ध होने की तिथि नियत हुई। इस उत्सव में इटावा से श्रीमान् पं० भीमसेन शर्मा जी तथा मथुरा से पं० अमृत रामजी पण्ड्या तथा काशगंज से पं० वद्रीदत्त जी वृद्ध पं० दिनेशराम जी तथा विल्सी निवासी पं० ज-

गणाथ तथा उझियानी निवासी एक वृद्ध पं० और रामचन्द्र जी शास्त्री आदि अनेक महानुभाव पधारे थे मुझे भी इस उत्सव में जाने का सौभाग्य प्राप्त हुआ था उक्त कार्य के आचार्य श्रीमान् पं० अमृत रामजी पण्ड्या ही सर्व सम्मत्यनुसार नियत हुये। उक्त पं० जी कर्मकाण्ड में बड़े निष्णात हैं आप ने जिस उत्तमता के साथ इस कृत्य को पूर्ण कराया उसे लेखनी लिखने में असमर्थ है। प्रथम दिन वैशाख कृष्णा अमावास्या सोमवार को प्रायश्चित्त तथा संकल्पात्मक नान्दी श्राद्ध केशवपनादिक कई कृत्य हुये। द्वितीय दिन प्रातःकाल ८ बजे से कार्य आरम्भ हुआ वेदी रचना अत्यन्त मनोहारिणी थी। दो चौकियों पर गणपत्यादि देव तथा नवग्रहादि देवों की स्थापना थी। पूजन कार्य बड़ी सावधानी तथा श्रद्धा पूर्वक वेद मन्त्रों द्वारा किया कराया गया पूजन का कृत्य बड़ा अपूर्व था अब तक देखने में न आया था पूजन के पश्चात् विनायक शान्ति पुनः संकल्पात्मक नान्दी श्राद्ध और प्रायश्चित्त बलि आदि कई कृत्य हुये तदनन्तर नवग्रह याग एवं सम्पूर्ण दिवस उसी कृत्य में समाप्त हुआ। वैशाख शुक्ला द्वितीया को पूर्व गणपत्यादि का पूजन, पुनः पिण्डात्मक नान्दी श्राद्ध अरणिमन्थन अग्न्याधान आदि कृत्य निर्विघ्न समाप्त हुये। चतुर्थ दिन तन्तु-इष्टि हुयी इस उत्सव में सब को यथास्थित दक्षिणा वितरणादिक पं० रामदयालु जी ने किया। इस कृत्य में विशेष रूप से धन्यवाद के पात्र श्रीमान् पं० भीमसेन शर्मा जी महाराज हैं जिन्हों ने अति परिश्रम के साथ कल्पविषय में पुण्यावगाहन कर सर्वसाधारण को इस अलभ्य लाभ से भूषित किया और पद्धति बनाकर इस मार्ग को सुगम किया। द्वितीय धन्यवाद पं० अमृतराम जी शर्मा पण्ड्या को है जिन्हों ने घर के सब कृत्य को छोड़कर बड़े परिश्रम के साथ इस कृत्य को पूर्ण कराया और अपनी वेदज्ञता का परिचय दिखाया तृतीय धन्यवाद आये हुये पण्डितवर्गों को है जिन्हों ने ग्रीष्मकालीन कष्ट सहकर भी पधार कर इस कृत्य को सुशोभित किया चतुर्थ धन्यवाद के पात्र पं० बद्रीदत्त तथा ठाकुर लाखन सिंह जी हैं जो सपरिवार तन मन धन से इस कृत्य में सहायता देते रहे। अन्त में परमात्मा से प्रार्थना है कि पं० जी के इस कृत्य को आजन्म पूर्ण करें और श्रौताधान करने का सौभाग्य प्राप्त करावे॥

गंगातटसेवी जीवनदत्त शर्मा
अध्यापक पाठशाला नरवर

सनातनधर्म की जय,

आज फर्रुखाबाद में कई एक वर्षों से सनातनधर्म महामण्डल स्थापित है उस का एक उत्तम बृहत् अधिवेशन देखने का सौभाग्य प्राप्त हुआ, इस में पं० दुर्गादत्त जी पन्थ महामहोपदेशक वाग्मीवर पं० भीमसेन जी शर्मा ब्राह्मणसर्वस्व सम्पादक। पं० हरिप्रपन्न जी स्वामी उपदेशक (लालमन भट्टाचार्य जी वकील मन्त्री सनातनधर्म महामण्डल फर्रुखाबाद) आदि के व्याख्यान बड़े रमणीक और अत्यन्त उत्कर्ष जनक भक्ति रस से टपकते हुए तीन दिन तक हुये पं० दुर्गादत्त जी पन्थ का व्याख्यान पुराणतत्त्व, प्रतिमापूजन, विधवा विवाह खण्डन, अवतार सिद्धि आदि विषयों पर संयुक्त वेद प्रमाण विहित हुआ इस को श्रवण करके भक्तों के प्रेमाश्रु वहने लगे–और कितने ही पुरुष अन्य धर्मों की हवालात से बच गये। इसी प्रकार पं० भीमसेन जी का व्याख्यान वेदसम्मत श्राद्धकर्त्तव्यता निरूपण विधवाविवाहखण्डन मूर्त्तिपूजन आदि विषयों पर सार गर्भित भले प्रकार हुआ; और सैकड़ों आर्यों के समक्ष पण्डित जी; शास्त्रार्थ करने को कटिबद्ध थे, आप का व्याख्यान बड़ा ही गूढ था, अतएव सनातनधर्म मण्डल के, मन्त्री पं० लालमन जी भट्टाचार्य वकील ने अनुवाद करके–सज्जनों के हृदयारविन्द को प्रफुल्लित कर दिया, इस सभा में प्रथम वेद पाठ होता था उस में, पं० प्रयागदत्त भी कोशाध्यक्ष तथा पं० भागीरथ जी स्वामी वैद्य आदि महानुभाव वेदध्वनि सस्वर करते थे, भजनमण्डली भगवद्गुणानुवादों को गान कर कर भक्तों के चित्त को प्रसन्न करती थी, सावित्री जी की धर्मशाला बड़ी होने पर भी स्थान बैठने को अप्राप्य था, बार बार सनातनधर्म की जय होती थी तथा करतालध्वनि से सभास्थान गूंज रहा था, पं० लालमन जी वकील, श्रीमती सावित्री, तथा यहां के मारवाड़ियों का प्रबन्ध भी सराहने योग्य था, पं० मुकन्दराम जी पुजारी, पं० काशीनाथ भूतपूर्व मन्त्री, पं० परमानन्द शुक्ल सभा में सन्मानार्थ उपस्थित थे, ॥

सनातनधर्म की जय, संवत् १९६२ फाल्गुण सुदी, ९ रविवार,

हस्ताक्षर, पण्डित, भागीरथस्वामी वैद्य,

सनातनधर्ममहामण्डल, फर्रुखाबाद

गरीबों को मुफ्त भी मिलेगी (२)

हिन्दु सुधार वैदिक औषधालय की सिद्ध ओषधियें

दुनियां में सब से बढ़कर आरोग्यता हो परम लाभ है

नेत्रों से विना संसार का आनन्द नहीं। फायदे ममीरे से कुछ कम नहीं ॥

दृष्टी की कमजोरी धुन्ध गुवार नेत्रों का वाल गिरना खुजली पड़वाल अंधेरा आंखों से पानी बहना सर्वनेत्र रोग के लिये रसायन असली भीमसेनी कपूर का नयनामृत अञ्जन १ तो० दाम २) रु० धुन्ध फोले के लिये अमृत सिताञ्जन १ तो० दाम ५) रु० पुराने सुजाक के लिये याने बीस प्रकार के प्रमेह के लिये प्रमेहान्तरस १४ खुराक दाम १।।।) रु० रक्त शोधक अर्क खून की बीमारियों और उपदंश से खून बिगड़े के लिये १ शीशी ४ औंस दाम १) रुपया रक्तार्श दमनी वटिका खूनी बवासीर के लिये कितना ही खून क्यों न जाता हो १४ गोली खाने से बिलकुल आराम दाम १) रु० पाण्डुरिस ज़ोफ जिगर पाण्डुरोग के लिये कुठार है १४ खुराक दाम १) रु० विरेचन दमनार्क वदहज़मी से वार २ पाखाना आने की शिकायत को रोकने के लिये ५ बूंद काफी हैं गृहस्थ के रखने योग्य १ औंस शीशी दाम २) रु० लोमशातन अर्क जंटलमैनों के लिये बाल उड़ाने का १ औंस शीशी ॥) आने, ३ शीशी १) रु०, १ दर्जन के ३) रुपया। रुचि वर्द्धक चूर्ण गिज़ा देर से हज़म होना भूख कम लगना मन का मिचलाना अजीर्ण बदहज़मी पेट में शब्द होना प्यास लगना प्रथमावस्था हैज़ा हिचकी रोग को भी बहुत गुणकारी है दाम फी तोला ।) आने ५ तोला दाम १) रु० विशूच्याध्मानहंत्री गोली हैज़ा पेट का गुम्म होना और बोलना पेटशूल खट्टे डकार आना पाचन शक्ति कम होना कलेजे में पीड़ा पड़ना अफरा होना १०० गोली दाम ।।।) आने। कासघ्नीवटिका खुशक वा तर खांसी के लिये अलग अलग हैं १०० गोली दाम ।।।) आने। व्यवस्था पत्र साथ रवाना होगा डाकव्यय अलग होगा अन्य रोगों की औषधी भी मिल सक्ती हैं चातुर्थिक बुख़ार दाद पीड़ा की दवाई)॥ टिकट भेजने से मुफ्त रवाना होगी ॥

मन्त्री सनातनधर्म्म सभा की सिफारिश आने पर विद्यार्थी वा निर्धनों को सिर्फ डाकव्यय खर्च करने से दवाई भेजी जायगी ॥

पण्डित गुरुदत्त शर्मा मैनेजर हिन्दुसुधार वैदिक औषधालय

औफिस बहराम पुर, ज़िला गुरुदासपुर (पञ्जाब)

॥-धावहूकाम धाम सबत्यागी (२)-॥

आनन्दसमाचार ! सनातनधर्म का प्रचार !! हिन्दू शास्त्र का गुप्तरहस्य !!!

—○:* व्याख्यान रत्न माला *○—

प्रियपाठक गण! आजकल जैसा हिन्दू धर्म पर सङ्कट पड़ा है वैसा और किसी धर्म पर नहीं, कराल कलिकाल की विशाल महिमा से, आजकल की नई रोशनी के वितण्डावादी पुरुष अचल हिन्दू धर्म को अपनी असंगत बातों से उड़ाना चाहते हैं। ऐसे अदूरदर्शी लोगों के फेर में हमारे बहुत से भोले भाले हिन्दू भाई पड़ जाते हैं, ऐसे समय में एक ऐसी पुस्तक की बड़ी ही आवश्यकता थी कि जिस से साधारण मनुष्य भी अपने धर्म में दृढ़ होजायें तथा नये महाशय भी व्याख्यान देकर सनातनधर्म का प्रचार कर सकें, यह पुस्तक इसी अभाव के दूर करने के लिये बनाई गई है, बहुत क्या इस एक ही पुस्तक से पूरा व्याख्याता होसक्ता है। पातिव्रत धर्म, आध्यात्मिक उन्नति, गो-रक्षा, वैश्यधर्म, वर्णव्यवस्था, मृत्यु पश्चात् जीवन, सम्प्रदाय भेद, धैर्य्य, क्षमा, उपनयन, प्राचीन और अर्वाचीन उन्नति, साकारोपासना, अवतार, मूर्त्तिपूजा श्राद्ध, तीर्थ, सनातन धर्म की महिमा, भक्ति, वैदिक धर्म की श्रेष्ठता आदि विविध विषयों पर सनातनधर्मानुसार श्रुति, स्मृति, इतिहास, पुराणोंके वाक्य तथा अनेक प्रकार की अखण्डनीय युक्तियों से व्याख्यान लिखे गये हैं। हम अनुरोध पूर्वक कहते हैं कि इस पुस्तक की एक प्रति हिन्दूमात्र को अपने पास रखनी चाहिये। यदि बड़े २ महोपदेशकों की वाक्य रचना देखनी हो, यदि बड़े २ समाजों में अपनी प्रेममयी वाणी से श्रोताओं को मुग्ध करने की इच्छा हो, यदि सनातन धर्म के जटिल विषयों का भाव दर्पण की समान देखना हो तो इस अमूल्य रत्न के लेने से कदापि न चूकिये। बढ़िया काग़ज़ पर बम्बई के सुन्दर टाइप में छपी विलायती कपड़े की जिल्द बंधी है, पृष्ठ संख्या २०० सायज़ रायल अठपेजी है सर्वसाधारण के सुभीते के लिये मूल्य केवल १॥) एक रुपया आठ आने। तिस पर भी व्याख्यानरत्नमाला के प्रत्येक ग्राहक को धर्म प्रचार के हेतु निम्नलिखित ६ छः पुस्तकें उपहार में दी जावेंगी ॥

उपहार ॥

१—पुनर्जन्मविचार, २—द्रौपदी चरित्र, ३—रहिमनशतक, ४—महा-रामायण, ५—वेदान्तसार, ६—आश्चर्य प्रश्न विज्ञान ॥

पता—श्री. रामचन्द्र और कम्पनी दीन्दारपुरा—मुरादाबाद

५) रु० का माल ३) रु० में

गौरी नागरी कोष

जिस की पांच वर्ष से धूम पड़ रहीं थी अब छपकर तयार होगया यह कोष वही है जो बड़े२ विद्वानों की मंडली द्वारा १० वर्ष के परिश्रम से तयार हुआ और ऐसा उत्तम कोष आज तक नहीं बना और न आगे को आशा है यह एक बी०ए० पास मास्टर है ४) में उम्रभर के लिये नौकर होता है रात दिन पास रहेगा जब इससे हिन्दी उर्दू प्राकृत संस्कृत अरबी फारसी आदि शब्दों के मायने पूछोगे पहिले हिन्दी में समझायेगा फिर अंगरेजी में बतलायेगा देव नागरी भंडार के रत्नों में यह कोहनूर हीरा है वकील मुख्तार जमींदार अह-लकार ग्रन्थकार लेखक आदि सब का सहायक है पश्चिमोत्तर प्रदेश के छोटे लाट म्यकडानल बहादुर तथा रीवां नरेश एवं टैक्टबुक कमेटी पंजाब ने भी इसकी क़दर की है ऐसा लायक़ मास्टर [कोष] अब और दूसरा नहीं है ट्रा-न्सलेशन [तर्जुमा हिन्दी से अंगरेजी अंगरेजी से हिन्दी] करने वालों के बड़े काम का है अतएव स्कूल के विद्यार्थी हिंदी और अंगरेजी में योग्यता प्राप्त करने के अभिलाषी एवं अध्यापक (मास्टर) इसको खरीदने से न चूकें ॥

सुनते हैं साहब ! एक नई बात ॥

केवल पांच आने मात्र में रासकोप सिस्टम घड़ी देंगे। किन्तु प्रथम पांच आने भेजकर हमारा सार्टीफिकेट हांसिल की जियेगा।

पांच सौ व्यापार मू० १) रू०

इसकी सिर्फ सौ कापियां बाकी हैं जिन्हें मगाना हो झट पट मगालें अन्यथा पछिताना होगा यह किस्सा नहीं है जो एकबार पढ़कर ताख में रख दो इसमें रंग रोगन वार्निश साबुन दियासलाई मीनाकारी अर्क कपूर आदि चीज़ बनाने की रीति लिखी है ऐसा कोई व्यापारी नहीं जिसके काम की बात इसमें न मिले।

दो अदद के खरीदार को एक अदद मुफ़्त में देंगे।

रबर टाइप का अंगरेजी छापाखाना सब सामान सहित २।) रु० में।

नाम पता ब्रोड़पत्र विजिटिंग कार्ड कुछ ही छापिये मुहर बनाना भी न पड़ेगी। सब इसके द्वारा अंगरेजी बहुत जल्द सीख जाते हैं।

पं० सर्यप्रशाद शर्मा मैनेजर सारस्वत कम्पनी मेरठ सिटी।

श्रीगणेशायनमः ॥

ब्राह्मणसर्वस्व ॥

THE

BRAHMAN SARVASWA

आर्य्यम्मन्यसदार्य्यकार्य्यविरहा आर्य्यास्त्रयीशत्रव,
स्तेषांमोहमहान्धकारजनिता–ऽविद्याजगद्विस्तृता ।
तन्नाशायसनातनस्यसुहृदो धर्मस्यसंसिद्धये,
ब्रादिस्वान्तमिदंसुपत्रममलं निस्सार्य्यतेमासिकम् ॥
धर्मोधनंब्राह्मणसत्तमानां, तदेवतेषांस्वपदप्रवाच्यम् ।
धनस्यतस्यैवविभाजनाय, पत्रप्रवृत्तिःशुभदासदास्यात्॥

भाग ४] मासिकपत्र मासाङ्क [७

निकामे निकामे नः पर्जन्यो वर्षतु फलवत्यो न ओषधयः
पच्यन्तां योगक्षेमो नः कल्पताम् ॥

पं० भीमसेन शर्मा द्वारा सम्पादित होकर
ब्रह्म यन्त्रालय–इटावा में
मुद्रित होकर प्रकाशित होता है ॥
संवत् १९६२ वि० ३० नौंबर सन् १९०५ ई०

विषयः–१–मङ्गलाचरण स्तुति प्रार्थना। २–स्मार्त्तधर्ममीमांसा। ३-वेदप्रकाशकाभिव्यापन। ४-सत्य का ग्रहण असत्य का त्याग। ५-विवेक। ६-राद्धान्तरत्नावली। ७-प्रेरितलेख। ८-समाचार ९-विज्ञापन। १०-सूचना।

ब्राह्मणसर्वस्व की अगाऊ वार्षिक मूल्य डाकव्यय सहित २।) है

विज्ञापन छपाने बंटाने के लिये नियम ॥

१–जो विज्ञापन ब्रा०स० में छपें वा बांटे जावें उन के सत्य मिथ्या होने के उत्तर दाता विज्ञापन वाले ही समझे जांयगे । ग्राहक शोच समझ के व्यवहार करें।

२–ब्रा स० में एक बार कोई विज्ञापन एक १ पेज से कम छपावे तो =)॥ लैन के हिसाब से लिया जायगा । तीन मास तक =)। ६ मास तक =) एक वर्ष तक -)॥ प्रति पङ्क्ति प्रतिमास लगेगा ।

३–एक वार एक पेज पूरा छपाने पर ३) लगेगा । १ पेज का तीन मास तक ७) छः मास तक १२) और १ वर्ष तक २०) लगेगा ।

४–जिस किसी को विज्ञापन बंटाना हो वह ब्रा० स० के दफ़र से पूछ कर ब्रा० स० का क्रोड़ पत्र और तारीख़ छापनी चाहिये । ४ मासे तक का विज्ञापन ४) में ८ मासे तक का ५) में और १ एक तोला तक का ६) में बांटा जायगा । रु० छपाई और विज्ञापन बंटाई का पहिले लिया जायगा ॥

ब्राह्मणसर्वस्व के नियम ॥

१–यह मासिकपत्र साढ़े छः फारम ५२ पेज रायल सायज का प्रतिमास की अन्तिम तारीख़ को निकलता है ॥

२–इस का वार्षिक मूल्य डाकव्यय सहित बाहर के ग्राहकों से २।) सवा दो रुपया अगाऊ और इटावे के ग्राहकों से २) लिया जाता है ॥

३–अगला अं० पहुंच जाने पर पिछला न पहुंचने की सूचना जो ग्राहक लिखेंगे उनको पिछला अं० विना मूल्य फिर से भेजा जायगा। देर होने पर द्विवारा अं० =) प्रति के हिसाब से मिलेंगे ।

४–राजा रईस लोगों से उन के गौरवार्थ ५) वार्षिक मूल्य लिया जायगा ॥

५–ब्रा० स० का द्वितीय अंक पहुंचने से पहिले २) ही लिया जायगा । द्वितीय अं० पहुंचने पर २-) तृतीय अं० पहुंचने पर २=) चौथा अं० पहुंचने पर २≡) पांचवें अं० पर २।) पश्चात् मूल्य न आने पर छठा अं० २।-) का वी०पी० जायगा॥

६–जो ग्राहक किसी कारण अग्रिम मूल्य न देकर वायदा करेंगे उन से उसी अंक की अवधि का मूल्य लिया जायगा। जैसे १२वां अंक पहुंचने पर २॥≡)

७–जो पहिला अंक नमूना का मंगावें वे ≡) के टिकट भेजें वा ।) वी० पी मगावें यदि वे ग्राहक होंगे तो उन को नियत मूल्य में ≡) मुजरा दिया जायगा।

८–मूल्य भेजते समय ग्राहक लोग अपना नम्बर अवश्य लिखा करें। चिट्ठी पत्री नागरी वा अंगरेज़ी में भेजा करें उर्दू के हम उत्तर दाता नहीं हैं।

९–कहीं बदली आदि के कारण स्थानान्तर में जावें तो अपना पता अवश्य बदलवावें । अन्यथा अंक न पहुंचने के उत्तरदाता हम न होंगे ॥

१०–जो ग्राहक लोग अन्य ग्राहक करावेंगे उनको यथोचित कमीशन मिलेगा और १० ग्राहक कराने वाले को १ मासिक पत्र बिना दाम मिला करेगा।

श्रीगणेशायनमः ॥

ब्राह्मणसर्वस्व

भाग ४] उत्तिष्ठतजाग्रतप्राप्यवरान्निबोधत [अङ्क ७

यत्रब्रह्मविदोयान्ति दीक्षयातपसासह ।
ब्रह्मा मा तत्र नयतु ब्रह्माब्रह्मददातु मे ॥

॥ मङ्गलाचरणम् ॥

ओं प्राणोमृत्युःप्राणस्तक्मा प्राणंदेवाउपासते ।
प्राणोहसत्यवादिन–मुत्तमेलोकआदधत् ॥ ११ ॥

अ०–प्राणएव सर्वदेहभृतां मृत्युर्मारकः प्राणस्तक्मा (तकि कृच्छ्रजीवने) अशुभकर्मफलं ददन्कृच्छ्रेण जीवयति। यद्वा तक्माऽपत्यं प्राणएवास्ति। त्वं कुमारउतवाकुमारीति वेद-वचनात्। देवाः सर्वेन्द्रियाणि प्राणमेवोपासते सति प्राणे तेषां सत्त्वादसति चासत्त्वादिति। सत्यवादिनं प्राणिनं प्राण-एवोत्तमे लोके प्रापयति। तस्मै प्राणाय नमइति पूर्वेणान्वयः॥

भा०–सर्वाभीष्टेषु जीवनमेवास्माकं प्राणिनामीप्सितत-ममिति कृत्वा पूर्वं जीवनरक्षकप्राणेश्वरस्तुतिरारब्धा। सति जीवनेऽन्यत्कर्त्तुं शक्यते। कारणात्मा प्राणः सर्वान्तर्यामी–ईश्वरो "येन प्राणः प्रणीयते„ स कार्यात्मनाऽवस्थितिमनिच्छ-न्प्राणिनो मारयति कार्यं च न कारणाद्वस्त्वन्तरमिति का-र्यपदेन कारणोपादानमेव वेदसिद्धान्तः। कार्यं चासद्विनश्वर-

विज्ञापन छपाने बंटाने के लिये नियम ॥

१—जो विज्ञापन ब्रा०स० में छपें वा बांटे जावें उन के सत्य मिथ्या होने के उत्तर दाता विज्ञापन वाले ही समझे जायंगे। ग्राहक सोच समझ के व्यवहार करें।

२—ब्रा स० में एक वार कोई विज्ञापन एक १ पेज से कम छपावे तो =)॥ लैन के हिसाब से लिया जायगा। तीन मास तक =)। ६ मास तक =) एक वर्ष तक -)॥ प्रति पङ्क्ति प्रतिमास लगेगा।

३—एक वार एक पेज पूरा छपाने पर ३) लगेगा। १ पेज का तीन मास तक ७) छः मास तक १२) और १ वर्ष तक २०) लगेगा।

४—जिस किसी को विज्ञापन बंटाना हो वह ब्रा० स० के दफ़्तर से पूछ करे ब्रा० स० का क्रोड़ पत्र और तारीख़ छापनी चाहिये। ४ मासे तक का विज्ञापन ४) में ८ मासे तक का ५) में और १ एक तोला तक का ६) में बांटा जायगा। रु० छपाई और विज्ञापन बंटाई का पहिले लिया जायगा॥

ब्राह्मणसर्वस्व के नियम ॥

१—यह मासिकपत्र साढ़े छः फारम ५२ पेज रायल सायज का प्रतिमास की अन्तिम तारीख़ को निकलता है॥

२—इस का वार्षिक मूल्य डाकव्यय सहित बाहर के ग्राहकों से २।) सवा दो रुपया अगाऊ और इटावे के ग्राहकों से २) लिया जाता है॥

३—अगला अं० पहुंच जाने पर पिछला न पहुंचने की सूचना जो ग्राहक लिखेंगे उनको पिछला अं० विना मूल्य फिर से भेजा जायगा। देर होने पर द्विवारा अं० =) प्रति के हिसाब से मिलेंगे।

४—राजा रईस लोगों से उन के गौरवार्थ ५) वार्षिक मूल्य लिया जायगा॥

५—ब्रा० स० का द्वितीय अंक पहुंचने से पहिले २) ही लिया जायगा। द्वितीय अं० पहुंचने पर २-) तृतीय अं० पहुंचने पर २=) चौथा अं० पहुंचने पर २≡) पांचवें अं० पर २।) पश्चात् मूल्य न आने पर छठा अं० २।-) का वी०पी० जायगा॥

६—जो ग्राहक किसी कारण अग्रिम मूल्य न देकर वायदा करेंगे उन से उसी अंक की अवधि का मूल्य लिया जायगा। जैसे १२वां अंक पहुंचने पर २॥≡)

७—जो पहिला अंक नमूना का मंगावें वे ≡) के टिकट भेजें वा ।) वी० पी मगावें यदि वे ग्राहक होंगे तो उन को नियत मूल्य में ≡) मुजरा दिया जायगा।

८—मूल्य भेजते समय ग्राहक लोग अपना नम्बर अवश्य लिखा करें। चिट्ठी पत्री नागरी वा अंगरेज़ी में भेजा करें उर्दू के हम उत्तर दाता नहीं हैं।

९—कहीं बदली आदि के कारण स्थानान्तर में जावें तो अपना पता अवश्य बदलवावें। अन्यथा अंक न पहुंचने के उत्तरदाता हम न होंगे॥

१०—जो ग्राहक लोग अन्य ग्राहक करावेंगे उनको यथोचित कमीशन मिलेगा और १० ग्राहक कराने वाले को १ मासिक पत्र बिना दाम मिला करेगा।

श्रीगणेशायनमः ॥

ब्राह्मणसर्वस्व

भाग ४] उत्तिष्ठतजाग्रतप्राप्यवरान्निबोधत [अङ्क ७

यत्रब्रह्मविदोयान्ति दीक्षया तपसासह ।
ब्रह्मा मा तत्र नयतु ब्रह्माब्रह्मददातु मे ॥

॥ मङ्गलाचरणम् ॥

ओं प्राणोमृत्युःप्राणस्तक्मा प्राणंदेवाउपासते ।
प्राणोहसत्यवादिन-मुत्तमेलोकआदधत् ॥ ११ ॥

अ०-प्राणएव सर्वदेहभृतां मृत्युर्मारकः प्राणस्तक्मा (तकि कृच्छ्रजीवने) अशुभकर्मफलं ददन्कृच्छ्रेण जीवयति। यद्वा तक्माऽपत्यं प्राणएवास्ति । त्वं कुमारउतवाकुमारीति वेद-वचनात् । देवाः सर्वेन्द्रियाणि प्राणमेवोपासते सति प्राणे तेषां सत्त्वादसति चासत्त्वादिति। सत्यवादिनं प्राणिनं प्राण-एवोत्तमे लोके प्रापयति। तस्मै प्राणाय नमइति पूर्वेणान्वयः॥

भा०-सर्वाभीष्टेषु जीवनमेवास्माकं प्राणिनामीप्सितत-ममिति कृत्वा पूर्वं जीवनरक्षकप्राणेश्वरस्तुतिरारब्धा। सति जीवनेऽन्यत्कर्त्तुं शक्यते। कारणात्मा प्राणः सर्वान्तर्यामी-ईश्वरो "येन प्राणः प्रणीयते,,स कार्यात्मनाऽवस्थितिमनिच्छ-न्प्राणिनो मारयति कार्यं च न कारणाद्वस्त्वन्तरमिति का-र्यपदेन कारणोपादानमेव वेदसिद्धान्तः। कार्यं चासद्विनश्वर-

मस्थिरमिति कृत्वा वैदिके व्यवहारे सदेव वस्तु प्राणादि-पदेन गृह्यते । सएव कारणात्मा प्राणो मृत्युः कृच्छ्रजीव-कश्चासत्यवादिनं प्रतिभवति सत्यवादिनं चोत्तमे स्वर्गादि-लोके स्थापयति । सत्यस्वरूपत्वात्सत्यप्रियत्वाच्च ॥

भावार्थ—(प्राणो मृत्युः) प्राण ही सब देह धारियों को मारने वाला (प्राणस्तक्मा) अशुभ कर्मों का फल देता हुआ कठिनाई से जीवन व्यतीत कराता है । अथवा " कन्या पुत्रादि रूप तुम ही हो „ इत्यादि श्रुति के अनुसार प्राण ही सन्तान रूप है (प्राणं देवा उपासते) इन्द्रियाधिष्ठातृ देवता लोग प्राण की ही उपासना करते हैं जैसा कि (ते प्रीताः प्राणं स्तुन्वन्ति०) इत्यादि प्रश्नोपनिषद् के द्वितीय प्रश्न में लिखा है । प्राण की विद्यमानता में सब इन्द्रियों का जीवन तथा प्राण के न रहने पर उनका मृत्यु दीखने से प्राण ही सब में मुख्य उपास्य देव है। सो छान्दोग्योपनिषदादि में विस्तार से लिखा है (प्राणो ह सत्यवादिनमुत्तमे लोक आदधत) प्राण ही सत्यवादी पुरुष को उत्तम स्वर्गादि लोक में पहुंचाता है। उस प्राण के लिये हमारा नमस्कार प्रणाम हो ॥

भा०—हम लोगों को सब अभीष्टों में अपने जीवन की रक्षा होना सर्वोपरि प्रिय है ऐसे विचार से प्रथम जीवन रक्षक प्राण नामक ईश्वर की स्तुति का आरम्भ किया गया । क्योंकि जीवन के बने रहने पर अन्य काम कर सकते हैं । कारण रूप सर्वान्तर्यामी ईश्वर ही प्राण है कि जो प्राणों का भी प्राण है प्राण का प्रेरक प्रवर्त्तक है । वह कार्य रूप से स्थिति न चाहता हुआ प्राणियों को मारता है इससे वह मृत्यु नामक है । कार्य अपने कारण से भिन्न वस्त्वन्तर नहीं इस लिये कार्यवाचक पद से कारण का ग्रहण करना ही वेद का सिद्धान्त है । कार्य असत् विनाश वाला है कारण सत् और अविनाशी है इससे कार्य प्राण ईश्वर नहीं किन्तु कारण ही ईश्वर है । चाहे यों कहो कि जैसे जल के तरङ्ग जल से भिन्न कुछ नहीं वा मिथ्या नाम रूप मात्र हैं वैसे कार्य प्राणादि कुछ नहीं नाम रूपमात्र मिथ्या हैं । इसी कारण वैदिक व्यवहार में प्राणादि पदों से कारण रूप सत्पदार्थ का ही ग्रहण करना इष्ट है। वही कारणात्मा प्राण असत्यवादी आदि निकृष्ट कर्मवालों के लिये मृत्युरूप और कठिनाई से जीवन व्यतीत कराने वाला होता है। और स्वयं सत्यस्वरूप तथा सत्य प्रिय होने से वही प्राणरूप परमात्मा सत्यवादी धर्मात्मा को उत्तम स्वर्गादि लोक में स्थापित करता है ॥ ११ ॥

अं० ६ पृ० २५६ से आगे स्मार्त्तधर्म मीमांसा-

द्वितीय गोस्वामी का यह भी बड़ा अज्ञान है कि उन को स्मृतियों की भी खबर नहीं कि किस स्मृति में क्या लिखा है ? । स्मृतियों में सर्व शिरोमणि सर्वमान्य परम प्रामाणिक मनुस्मृति है उसमें शिखा के लिये क्या लिखा है ? । यह खबर गोस्वामी को होती तो ऐसा कभी नहीं लिखते कि "स्मार्त्त ग्रन्थों में शिखा रखने का बड़ा आग्रह है," क्यों कि मनु० अ० २।२१९ में लिखा है कि-

मुण्डोवा जटिलोवास्या-दथवास्याच्छिखाजटः ।

अर्थ-ब्रह्मचारी या तो शिखा सहित सब केश मुंडावे (पर यज्ञोपवीत, मेखला कृष्णाजिनादि अन्य सब चिन्ह यथावत रक्खे) अथवा जटिल रहे अर्थात् सब केशश्मश्रुरखाये रहे अथवा केवल शिखा मात्र केश रक्खे अन्य सब मुंड़ाता रहे। इस तीसरे पक्ष की अर्थापत्ति से (मुण्डो वा) इस प्रथम पक्ष में शिखा सहित सब केश मुंड़ानासिद्ध है । अब पाठक लोग सोचिये कि जब धर्मशास्त्र में ब्रह्मचारी के लिये तीन पक्ष हैं जिन में शिखा मुंडा देना भी आगया तो स्मृतियों में शिखा रखने का आग्रह कहां रहा। और कुश की शिखा धारण करने की आज्ञा देखकर जो गोस्वामी ने आग्रह समझा है सो वह गृहस्थ के प्रकरण की बात है। हां यदि गोस्वामी किसी स्मृति में ऐसा लेख दिखा सकें कि सब आश्रमों में सब द्विजों को शिखा अवश्यमेव रखनी चाहिये । तब तो स्मृतियों पर आक्षेप आसके सो ऐसा लेख किसी भी स्मृति में मिलना सम्भव नहीं है । ऐसी दशा में गोस्वामी का आक्षेप सर्वथा निरर्थक है। वेद में एक मन्त्र यह भी आता है कि—

यत्रवाणाःसंपतन्ति कुमाराविशिखाइव ॥ शु० यजु०१७।४८ ॥

अर्थः-जिस संग्राम में शिखा रहित कुमार बालकों के तुल्य वाण सम्यक् गिरते हैं कि जैसे शिखा रहित कुमार बालक इधर उधर को भागते खेलते हैं । इस कथन से मन्त्रकार ने चूड़ा कर्म वा उपनयन संस्कार के समय शिखा मुंडाने का संकेत दृष्टान्त से दिखाया है । अथर्ववेद में ब्रह्मचारी को दीर्घश्मश्रु लिखा है। इन सब वेद प्रमाणों के अनुसार मनु जी के उक्त प्रमाणानुसार ब्रह्मचारी के लिये तीनों पक्ष वेदानुकूल हैं। अब आशा है कि हमारे गोस्वामी जी हमारी लिखी सत्य २ व्यवस्था देख कर सन्तुष्ट होंगे और स्वीकार करेंगे।

और आशा है कि हमारे पाठक महाशय भी श्रुति स्मृति की व्यवस्था सहित लिखे हमारे किये समाधान को ठीक २ समझ जावेंगे ॥

गोस्वामी-एक चुटिया के रहस्य से भी बड़ा रहस्य है। जिस गायत्री को मूल मान कर स्मार्त्त भाई साम्प्रदायिक मन्त्रों की निन्दा करते हैं। वेद में लिखा है इस गायत्री से स्वर्ग नहीं मिला। -सामवेदताण्ड्य महाब्राह्मण-

देवा वै छन्दाᳬस्यब्रुवन्। युष्माभिः स्वर्गंलोकमयामेति ते गायत्रीं प्रायुञ्जत तया न व्याप्नुवन् ॥ अ० ७। खं० ५ ॥

देवताओं ने छन्दों (मन्त्रों) से कहा हम तुम्हारे द्वारा स्वर्गलोक को जायंगे। यह कह कर देवताओं ने गायत्री का प्रयोग किया उस से उन को स्वर्ग की प्राप्ति न हुई।

पाठकजन! अब आप ही विचार कीजिये "स्मार्त्तधर्म" में गायत्री की यह महिमा और वेद में उस की यह अकिञ्चित्करता!। यह स्मृति और श्रुति (वेद) का विरोध है। जो आप मनुस्मृति के वचनानुसार श्रुति को प्रबल मानते हैं। तब गायत्री में आप की श्रद्धा नहीं रहती है। और गायत्री में श्रद्धा रखते हैं तो वेद के सिद्धान्त से विरोध पड़ता है। क्यों[illegible]यत्री से देवताओं को भी स्वर्ग प्राप्ति न हुई कि जो स्वर्ग के ही रहने वाले हैं। तब हम को तुम को कब हो सकती है?॥

समाधान-हमारी समझ में वैष्णव सम्प्रदाय को सर्वोत्तम मानने वाले अच्छे वैष्णव महाशयों का भी यह सिद्धान्त है कि विष्णुभगवान् की वेद तथा स्मृति पुराणादि में भी सर्वोपरि प्रशंसा है विष्णु की महिमा अपार है। हम लोग उन्ही विष्णुभगवान् के विग्रह विशेषों के भक्त तथा उपासक हैं इस लिये हमारा मत श्रुति स्मृति पुराणादि के अनुकूल है। विष्णुभगवान् को सर्वोपरि उपास्य देव सिद्ध करने की चेष्टा भी अब तक अनेक वैष्णव महाशयों ने की है। हम भी ऐसे वैष्णव महाशयों को सनातन धर्मानुयाइयों में परिगणित करने की सम्मति दे सकते हैं। परन्तु गोस्वामी के जैसे मत वाले वैष्णव लोग हमने अब तक नहीं देखे हैं। हमें विश्वास है कि गोस्वामी के ऐसे लेख को देखने वाला कोई भी आस्तिक उनको सनातनधर्मी हिन्दु नहीं कहेगा। सनातन हिन्दु धर्म को मानने वाले सभी आस्तिक लोग वेद को सर्वोपरि शिरोधार्य मानते हैं। पर गोस्वामी का आक्षेप वेद स्मृति सभी

पर समान है। यदि गोस्वामी थोड़ा शोचते कि गायत्री की निन्दा यदि वेद में है तो वेद आप ही अपना खण्डन करने वाला हो गया। तब ऐसा कदापि नहीं लिखते। अस्तु अब हम उक्त आक्षेप का समाधान संक्षेप से दिखाते हैं। संसार का यह नियम है कि देशान्तर कालान्तर और विषयान्तर में भिन्न देश भिन्न काल के पदार्थ वा भिन्न विषय के वस्तु अकिञ्चित्कर वा व्यर्थ हो जाते हैं। इससे उनकी अपने देश काल और विषय में निन्दा वा अकिंचित्करता कदापि नहीं होती। इसका दृष्टान्त भी हम दे चुके हैं कि शीत का सभी सामान प्रबल गर्मी में व्यर्थ हो जाने पर भी अपने समय में सदा सार्थक रहता है। और गर्मी के समय शीत के वस्त्रादि बुरे भी कहे जा सकते हैं। तथा गर्मी के दिनों में भी शिमला मंसूरी नैनीताल आदि प्रदेशों में देशान्तर हो जाने से वे ही शीत के वस्त्रादि फिर सार्थक उपकारी दीखते हैं। किसी एक द्वीप में ही काम आने वाले अनेक पदार्थ द्वीपान्तर में अकिञ्चित्कर वा निरर्थक हो जाते हैं तथापि अपने देश में वे सदा सार्थक ही बने रहते हैं। इसी के अनुसार जिस विषय में जिसका विशेष उपयोग है उस से भिन्न विषय में वही निरर्थक हो जाता है। इसी विचार के अनुसार ताण्ड्य महा ब्राह्मण में गायत्री छन्द की विषयान्तर में अकिञ्चित्करता दिखायी है किन्तु अपने विषय में उस की अकिञ्चित्करता नहीं है। गायत्री का विषय प्रातःसवन है। और विषयान्तररूप माध्यन्दिन सवन में उसका अनुपयोग दिखाया तो स्वार्थ में गायत्री की प्रशंसा यथावत् रही। उस का संक्षेप विचार देखिये। अग्निष्टोमादि सोमयाग सात प्रकार के हैं। तद्यथा—

१—अग्निष्टोम। २—अत्यग्निष्टोम। ३—उक्थ्य। ४—षोडशी। ५—वाजपेय। ६—अतिरात्र। और ७—आप्तोर्याम। अग्निष्टोम का ही द्वितीय नाम ज्योतिष्टोम भी है। यही प्रथम यज्ञ है। इन सातो श्रौतयज्ञों में तीन सवन होते हैं। प्रातःसवन, माध्यन्दिन सवन और तृतीय सवन वा सायं सवन। सवन नाम सोमलता को कूटकर रस निकालने का है उस सोमरस से होने वाले सब कर्मकाण्ड का नाम प्रातःसवनादि माना जाता है। इन तीनों सवनों में होने वाले कृत्य के लिये ब्राह्मण श्रुति और कल्पसूत्रकारों ने छन्दों का भिन्न २ विभाग किया है। तीनों सवन के देवता भी भिन्न २ हैं। प्रातः सवन का देवता अग्नि, माध्यन्दिन का इन्द्र और तृतीय सवन के विश्वेदेव देवता हैं। छन्दों के लिये शतपथ ब्राह्मण की श्रुतियों को देखिये। काण्ड ४ प्रपा० २ ब्रा० ४। कं० २०—

गायत्री वै प्रातःसवनं वहति। त्रिष्टुम्माध्यन्दिनं सवनं जगती तृतीयसवनं तद्वाऽनेकाकिन्येव त्रिष्टुम्माध्यन्दिनं सवनं वहति गायत्र्या च बृहत्या च। अनेकाकिनी जगती तृतीयसवनं गायत्र्योष्णिक्ककुब्भ्यामनुष्टुभा ॥ २० ॥ गायत्र्येवैकाकिनी प्रातःसवनं वहति।

अर्थः—गायत्री प्रातः सवन को त्रिष्टुप् माध्यन्दिन सवन को पूरा करती है। त्रिष्टु के साथ माध्यन्दिन सवन में गायत्री और बृहती सहायक रहती तथा तृतीय सवनस्थ जगती के साथ गायत्री उष्णिक् ककुप् और अनुष्टुभ् सहायक रहती हैं। पर गायत्री ही अकेली प्रातःसवन के काम पूरे करती है। यद्यपि पङ्क्ति गायत्री की भी सहायक है तथापि अन्य सवनों में एक से अधिक छन्द की सहायता अपेक्षित हुई और प्रातःसवन में गायत्री के साथ केवल एक पङ्क्ति की अपेक्षा हुई इस से गायत्री को एकाकिनी अनेकाकिनी दोनों कथन किये गये। प्रयोजन यह है कि माध्यन्दिन सवन में गायत्री की प्रधानता नहीं किन्तु वहां गायत्री गौण है और किसी वेद में वहां त्रिष्टुप् छन्द की प्रधानता तथा किसी में बृहती छन्द की प्रधानता है। तदनुसार सामवेद के ताण्ड्य महाब्राह्मण में माध्यन्दिनसवन में बृहती छन्द को प्रधान मानकर बृहती का स्तुतिरूप अर्थवाद दिखाया है कि-अ० ४। खं० ९-

एतद्वै यज्ञस्य स्वर्ग्यं यन्माध्यन्दिनꣳसवनं माध्यन्दिनस्य पवमानः पवमानस्य बृहती। यद्बृहत्याः स्तोत्रे दक्षिणा दीयन्ते स्वर्गस्यैव तल्लोकस्यायतने दीयन्ते। देवा वै छन्दाꣳस्यब्रुवन् युष्माभिः स्वर्गं लोकमयामेति ते गायत्रीं प्रायुञ्जत तया न व्याप्नुवꣳस्त्रिष्टुभं प्रायुञ्जत तया न व्याप्नुवन् जगतीं प्रायुञ्जत तया न व्याप्नुवन्ननुष्टुभं प्रायुञ्जत तया ऽल्पकादिव न व्याप्नुवꣳस्तआसां दिशाꣳरसान् प्रबृह्य चत्वार्यक्षराण्युपादधुः। सा बृहत्यभवत्तयेमांल्लोकान् व्याप्नुवन् बृहती मर्या ययेमांल्लोकान्व्यापामेति तद्बृहत्या बृहतीत्वम् ॥

गायत्री वै प्रातःसवनं वहति। त्रिष्टुम्माध्यन्दिनं सवनं जगती तृतीयसवनं तद्वाऽनेकाकिन्येव त्रिष्टुम्माध्यन्दिनं सवनं वहति गायत्र्या च बृहत्या च। अनेकाकिनी जगती तृतीयसवनं गायत्र्योष्णिकक्कुब्भ्यामनुष्टुभा ॥ २० ॥ गायत्र्येवैकाकिनी प्रातःसवनं वहति।

अर्थः—गायत्री प्रातः सवन को त्रिष्टुप् माध्यन्दिन सवन को पूरा करती है। त्रिष्टु के साथ माध्यन्दिन सवन में गायत्री और बृहती सहायक रहती तथा तृतीय सवनस्थ जगती के साथ गायत्री उष्णिक् ककुप् और अनुष्टुभ् सहायक रहती हैं। पर गायत्री ही अकेली प्रातःसवन के काम पूरे करती है। यद्यपि पङ्क्ति गायत्री की भी सहायक है तथापि अन्य सवनों में एक से अधिक छन्द की सहायता अपेक्षित हुई और प्रातःसवन में गायत्री के साथ केवल एक पङ्क्ति की अपेक्षा हुई इस से गायत्री को एकाकिनी अनेकाकिनी दोनों कथन किये गये। प्रयोजन यह है कि माध्यन्दिन सवन में गायत्री की प्रधानता नहीं किन्तु वहां गायत्री गौण है और किसी वेद में वहां त्रिष्टुप् छन्द की प्रधानता तथा किसी में बृहती छन्द की प्रधानता है। तदनुसार सामवेद के ताण्ड्य महाब्राह्मण में माध्यन्दिनसवन में बृहती छन्द को प्रधान मानकर बृहती का स्तुतिरूप अर्थवाद दिखाया है कि—अ० ४। खं० ९—

एतद्वै यज्ञस्य स्वर्ग्यं यन्माध्यन्दिनꣳसवनं माध्यन्दिनस्य पवमानः पवमानस्य बृहती। यद्बृहत्याः स्तोत्रे दक्षिणा दीयन्ते स्वर्गस्यैव तल्लोकस्यायतने दीयन्ते। देवा वै छन्दाꣳस्यब्रुवन् युष्माभिः स्वर्गं लोकमयामेति ते गायत्रीं प्रायुञ्जत तया न व्याप्नुवꣳस्त्रिष्टुभं प्रायुञ्जत तया न व्याप्नुवन् जगतीं प्रायुञ्जत तया न व्याप्नुवन्ननुष्टुभं प्रायुञ्जत तयाऽल्पकादिव न व्याप्नुवꣳस्तआसां दिशाꣳरसान् प्रवृह्य चत्वार्यक्षराण्युपादधुः। सा बृहत्यभवत्तयेमांल्लोकान् व्याप्नुवन् बृहती मर्या ययेमांल्लोकान्व्यापामेति तद्बृहत्या बृहतीत्वम् ॥

अर्थः—यज्ञ में माध्यन्दिनसवन स्वर्ग प्राप्ति का विशेष उपयोगी है। उस से भी अधिक पवमान और पवमान की अपेक्षा से भी अधिक उपयोगी बृहती छन्द है। जो माध्यन्दिन सवन में बृहती का स्तोत्र पाठ होने के समय ऋत्विजों को वेदी के भीतर ही दक्षिणा दी जाती है सो दक्षिणा स्वर्ग स्थान के निमित्त ही दी जाती है। देवता लोगों ने गायत्र्यादि छन्दों से कहा कि हम लोग तुम्हारे द्वारा स्वर्गलोक को जावें। ऐसा विचार कर गायत्री, त्रिष्टुप् जगती, अनुष्टुप् इन छन्दों का प्रयोग माध्यन्दिन सवन के प्रधान कृत्य में क्रम से किया इस कारण श्रुति में कही विधि से विपरीत हो जानेसे देवता लोग अपने इष्ट को प्राप्त नहीं हुए। तब उन देवताओं ने इन पूर्वादि चारों दिशाओं के चार अक्षर रूप रस निकाल कर बत्तीश अक्षर के अनुष्टुप् छन्द में चार अक्षर मिलाके बृहती छन्द नियत किया। गायत्री, उष्णिक्, अनुष्टुप् बृहती, पङ्क्ति त्रिष्टुप् और जगती इन सातों छन्दों में २४ से लेकर चार २ अक्षर बढ़ते जाते हैं तब ४८ अक्षर का जगती छन्द होता है। इस बृहतीछन्द से माध्यन्दिन सवन में स्तोत्र करके देवता अपने इष्ट को प्राप्त हुए (यहां छन्दः शब्द से छन्दोऽभिमानी देवता का ग्रहण जानो क्योंकि चेतन अधिष्ठाता से कहना बन सकता है। जिन छन्दों के प्रयोग से देवताओं का अभीष्ट सिद्ध नहीं हुआ उन का उस कृत्य में विनियोग करना शास्त्र विधि से विरुद्ध था। और बृहतीछन्द का विनियोग शास्त्रानुकूल था। इस प्रकार शास्त्र विधि के अनुकूल किया कर्म ही इष्टसाधक होसकता है शास्त्रविरुद्ध नहीं यह अभिप्राय श्रुति में दिखाया है किन्तु किसी भी छन्द की निन्दा नहीं है) यहां यदि गायत्री की निन्दा गोस्वामी समझे तो बहुत भूल गये क्योंकि उसके साथ ही त्रिष्टुप् जगती अनुष्टुप् इन तीन छन्दों की भी अकिंचित्करता दिखायी है। पाठकगण ! शोचने का स्थान है कि शास्त्र मर्यादा को न जानने वाले प्राकृत मूर्ख लोगों के तुल्य हमारे गोस्वामी को एक बड़ा भ्रम अज्ञान इस विषय में हुआ है कि वे गायत्री शब्द से (ते गायत्रीं प्रायुञ्जत) इत्यादि सामवेदीय ताण्ड्य महाब्राह्मण के पाठ में (तत्सवितु०) इस खास मन्त्र का ग्रहण समझते हैं। सो यह सर्वथा भूल है। गायत्री कहने से शास्त्रों में २४ अक्षर के सहस्रों छन्द हैं वे सभी समझे जाते हैं कि जैसे अनुष्टुप् ३२ अक्षर का छन्द समझा जाता है वैसे २४ अक्षर का गायत्री छन्दमात्र समझा जाता है। उन में से श्रुतियों में

तथा श्रौतकल्प सूत्रों में जिन २ गायत्री मन्त्रों का निर्देश किया है वे सब वहां लिये जाते हैं किन्तु (तत्सवितु०) इस गायत्री मन्त्र का वहां विनियोग भी नहीं है। और वेद का सार मान कर इसी खास गायत्री की प्रशंसा स्मृतियों में की है। अन्य (अग्निमीडे पुरोहितं०) इत्यादि सैकड़ों सहस्रों गायत्री मन्त्र वेद में हैं वे सब अन्य मन्त्रों के समान हैं। अभिप्राय यह है कि स्मृतियों में जिस गायत्री की बड़ी महिमा दिखाई है जिस से स्मार्त्त लोग इस खास गायत्री को परम पावनी मानते हैं। उस के विषय में ताण्डय महा ब्राह्मण में कुछ भी विचार नहीं किया गया है। और जिस सामान्य गायत्री छन्दमात्र की अकिञ्चित्करता दिखायी है वह भी उन छन्दों का विषयान्तर में अनुपयोग दिखाया है कि प्रातःसवन में गायत्री छन्द का विशेष उपयोग है और माध्यन्दिन सवन में उस का विशेष उपयोग नहीं किन्तु वहां बृहती छन्द की उत्तमता दिखाना ब्राह्मण श्रुति का अभीष्ट है। इस प्रकार शास्त्र के मर्म का विचार यथार्थ करने से श्रुति स्मृति में कुछ भी लेशमात्र भी विरोध नहीं है किन्तु गोस्वामी के अज्ञान में सब दीखता होगा। सो उन्हीं जैसे अज्ञों में निवास करे।

अब रहा गायत्री मन्त्र को मूल मान कर सांप्रदायिक मन्त्रों की निन्दा करना उस में हमारा विचार यह है कि जिन अक्षरों में किसी देवता को प्रणाम वा नमस्कार वा स्तुति आती है वा राम, सीताराम, राधाकृष्ण वा कृष्ण गोविन्द, शिव गौरी गणेश आदि केवल नाम लेना इन सब नामों के उच्चारण में वा जपने में पुण्य है निन्दा करने वाले निन्दित हैं। ईश्वर के किसी नामरूप का ध्यान स्मरण वा जप मनुष्य के लिये सदा कल्याणकारी है। युक्ति को प्रबल मानने वालों के लिये यह है कि जैसे कठोर बोलने झूठ बोलने निन्दा करने गाली देने आदि कामों में मनुष्य को वाचिक पाप लगता है निकृष्ट वाणी के बोलने सुनने से मन में भी बुरे संस्कार पहुंचते हैं जिस से मन भी दूषित होता है। इसी के अनुसार धर्म की चर्चा करने से धर्मात्मा पुण्यात्मा महात्माओं का नाम लेने से उन का गुणानुवाद वाणी से कहने वा सुनने से मन में भी शुद्ध संस्कार पहुंचते हैं जिस से मन में पुण्य का संचय होता जाता है। और ईश्वर देवता सर्वोपरि शुद्ध पुण्यात्मा धर्मात्मा महात्मा हैं इस कारण उन के ध्यान स्मरण नामोच्चारण से सदा ही पुण्य होता मन की मलिनता दूर होती है। इसलिये किसी भी सम्प्रदाय के किसी मन्त्र वा ईश्वर को

किसी भी नाम से जपे भक्ति उपासना करे सभी अच्छा है निन्दा किसी मन्त्र की नहीं करनी चाहिये । हम तो यहां तक मानते हैं कि (बिस्मल्ला:०) इत्यादि वाक्य भी मुसलमानों के लिये अच्छे हैं । तथा अन्यों के लिये भी हानिकारक वा पाप के हेतु नहीं हैं । परन्तु ब्राह्मणादि के वर्णधर्म जाति धर्म वा कुल धर्म के अनुसार न होने से हम लोगों को अकर्त्तव्य हैं ।

इस प्रसंग में एक बात अवश्य शोचनी है कि जैसे खास मालिक वा राजा के सामने अन्य राज कर्मचारी यदि छोटे समझे जावें वा प्रधान के तुल्य उनकी प्रशंसा प्रतिष्ठा न की जाय तो यह उनकी निन्दा नहीं है किन्तु उचित बात है । वैसे ही वेद मन्त्र सब प्रकार के साम्प्रयिक मन्त्रों की अपेक्षा राजा वा प्रधान हैं वेद की अपेक्षा साम्प्रदायिक सभी मन्त्र छोटे वा कम दर्जे के हैं इस से यदि गो स्वामी आदि कोई भी पुरुष साम्प्रदायिक मन्त्रों की निन्दा समझता है तो यह उसकी भूल है सो यह राय प्रत्येक वेदमतानुयायी आस्तिक विद्वान् की होगी क्योंकि स्वर्गवासी श्रीमान् रामसिश्र शास्त्री जी स्वयमेव सब साम्प्रदायिक मन्त्रों की अपेक्षा वेद मन्त्रों की विशेष प्रतिष्ठा प्रशंसा लिख वा छपा चुके हैं। यदि हमारे गोस्वामी को वेद मन्त्रों की प्रशंसा सर्वोपरि स्वीकार नहीं है तो प्रथम उनको चाहिये कि राम मिश्र शास्त्री जी की छपाई मन्त्र मीमांसा नामक पुस्तक का प्रथम खंडन करके दिखावें। और यह बात सत्य है कि वेद वर्णाश्रम धर्म का पूर्णतया प्रतिपादक वा रक्षक है। इसी लिये वेद मन्त्रों में द्विजों को ही अधिकार है और साम्प्रदायिक मन्त्रादि शूद्रादि के लिये भी वैसे ही हैं जैसे कि ब्राह्मणादि के लिये हैं इस कारण सम्प्रदायी मन्त्रों का वर्णाश्रम धर्म से कुछ सम्बन्ध नहीं है चाहे यों कहो कि वर्णाश्रम धर्म ही मुख्य है उसी के प्रतिपादन से श्रुति स्मृति की अधिक प्रतिष्ठा प्रशंसा है और वर्णाश्रम के साथ कुछ ताल्लुक न होने से ही सम्प्रदायी मन्त्रादि वेद मन्त्रों से छोटे दर्जे के हैं। जो बात मन्त्रमीमांसा पुस्तक में श्रीमान् रामसिश्र शास्त्री जी ने सिद्ध की है उसी के अनुसार हमारी भी सम्मति है कि ब्राह्मणादि द्विजों को उपनयनादि के समय गायत्री आदि वेद मन्त्रों का उपदेश होना चाहिये और वेही मन्त्र उन के गुरु मन्त्र समझे जावें क्योंकि उन्ही मन्त्रों से उन २ के ब्राह्मणादिपन की रक्षा है। अर्थात् गुरु मन्त्रों के स्थान में सम्प्रदायी द्वादशाक्षरादि मन्त्रों का उपदेश कदापि नहीं होना चाहिये । रहे धर्म प्रेमी शूद्र लोग उनके लिये भी स्मार्त धर्म में पूरी २ व्यव-

वस्था है। सब वर्णों के लिये एक ही सविता देव, वेद की मर्यादानुकूल उपास्य हैं। ब्राह्मण का गुरु मन्त्र ब्रह्म गायत्री (तत्सवितु०) क्षत्रिय के लिये (देवस-वितः प्रसुव०) यह त्रिष्टुप् सावित्री और वैश्य के लिये (विश्वा रूपाणि प्रति मुञ्चते०) यह जगती सावित्री है ये तीनों वेद के मन्त्र हैं। शूद्र के लिये ऋषियों के आदेशानुसार अनुष्टुप् गुरु मन्त्र होना चाहिये। सो जब साक्षात् वेद का अधिकार शूद्र को नहीं दिया तब वेद का आशय लेकर अनुष्टुप् छ-न्द नियत किया गया है सो यह है कि-

योदेवःसविताऽस्माकं धर्मकर्माभिवृद्धये।
प्रेरयेत्तस्ययद्भर्ग-स्तद्वरेण्यमुपास्महे ॥ १ ॥

इस मन्त्र का वही अभिप्राय है कि जो ब्रह्म गायत्री का है इसी मन्त्र का उपदेश धर्म प्रेमी शूद्रों को गुरु मन्त्र के स्थान में होना चाहिये इन चारो वर्णों के चारो मन्त्रों में एक ही सविता देव की उपासना है। और यदि गु-रु मन्त्र के स्थान में शूद्रों को सम्प्रदायी मन्त्र का उपदेश दिया जाय तब भी कुछ विशेष हानि नहीं है पर द्विजों के लिये अवश्य हानि है। यदि कोई सम्प्रदायी लोग हठात् सम्प्रदायी मन्त्रों का उपदेश द्विजों तथा शूद्रों को समान रूप से करते कराते हैं तो वास्तव में वे लोग वर्णाश्रम धर्मभेदक नियम को तोड़ने वाले हैं।

वेदादि शास्त्रों के गूढ़ अभिप्रायों को समझने समझाने और खोजने तथा मानने वालों की गायत्री में कभी अश्रद्धा नहीं हो सकती किन्तु गो-स्वामी जैसे लोगों को गायत्री में अश्रद्धा हो तो कुछ आश्चर्य भी नहीं है। क्योंकि इन लोगों की विचारशक्ति को सम्प्रदायी वायु ने डमाडोल करदिया वा वैदिक मर्यादा से हटादिया है।

इस प्रसंग में अनेक लोगों को यह शंका होगी कि फिर सम्प्रदायों के मन्त्रों को अवकाश ही कहां रहा और फिर सम्प्रदाय भिन्न २ क्यों हो गये अर्थात् वे निरर्थक वा मिथ्या क्यों नहीं हुए ?। इस का उत्तर यह है कि गुरुमन्त्र के स्थान को छोड़ कर अन्य सामान्य समयों में उन २ सम्प्रदायों के मन्दिरों में जाने दैवतप्रतिमा दर्शन के समय सम्प्रदायी मन्त्रों का उपयोग रहेगा। और द्वितीय सत्य २ विचार तो यह है कि वेदानुकूल वर्णाश्रमों के धर्म कर्म को वेदाध्ययनादि द्वारा जिन लोगों ने नहीं जाना समझा और न कुछ क-रते कराते हैं तथा न उस को जानने करने समझने की रुचि वा श्रद्धा रखते हैं।

ऐसे लोगों के लिये सम्प्रदाय हैं। सम्प्रदायों में अटक जाने से ऐसे लोगों में कुछ २ धर्म कर्म फिर भी बना है। जैसे कि सनातन वैदिक धर्म से सर्वथा अरुचि अश्रद्धा जिन को हुई ऐसे मनुष्यों का ग्रोह आर्यसमाज बन गया। वह यद्यपि अच्छा नहीं क्योंकि सनातनधर्म का पूरा विरोधी है तथापि ईसाई मुसलमान हो जाने की अपेक्षा अच्छा है। क्योंकि वेदशास्त्रों को भूंठ मूठ ही सही अच्छा तो कहता है। वैसे ही शैव वैष्णव शाक्तादि सम्प्रदाय भी वैदिक धर्म की मर्यादा से किसी कारण हटे हुए हिन्दुओं को किसी तरह एक प्रकार के धर्म में रोकने वाले होने से उपकारी हैं। मान लो कि जो २ ब्राह्मणादि द्विज कालचक्र के फेर हेर से वेदोक्त वर्णाश्रम धर्म को भूल गये वा छोड़ गये उन को साम्प्रदायिक धर्मों का भी अवलम्ब न मिलता तो हिन्दुधर्म का जितना नाम निशान अब भी उन में बना है वह कुछ भी न होता सर्वथा ही पतित हो गये होते। सारांश यह है कि वेदोक्त वर्णाश्रम धर्म से सांप्रदायिक धर्म नीची कक्षा का होने पर भी धर्म के अभाव की अपेक्षा बहुत अच्छा है। वेद रीति से अग्नि वायु आदित्य नामक जो तीन देवता माने जाते हैं वेही तीनों स्मार्त्त तथा पौराणिक रीति से ब्रह्मा विष्णु महेश हैं। इस कारण इन देवताओं का मानना मात्र सम्प्रदाय नहीं है। किन्तु सम्प्रदाय वा मत वेही कहे जावेंगे कि जो अपने मत को अच्छा मानते हुए अन्य सब को निकृष्ट समझते हैं। वास्तव में एक ही ईश्वर शिव विष्णु आदि अनेक नामरूप वाला है इस कारण इन देवताओं में विरोध कुछ नहीं है॥

गोस्वामी—आज कल के स्मार्त्त धर्म को यह कहें कि वो आगे बढ़ने का पथ नहीं परन्तु स्थिर रहने का पथ है तो हो सकता है। क्योंकि जैसा कोई आदमी चौराहे पर खड़ा है और चार रास्तों को देख रहा है कि चाहे जिस रास्ते से जाऊं पर जब चलेगा तब एक ही रास्ते चलेगा। पांच रूप धरकर पांच रास्ता नहीं चल सकेगा।

विचारो एक स्मार्त्त है और पांच देवताओं का पूजन करता है, अच्छा करने दीजिये अब वह मृत्यु के अनन्तर कहां जायगा? यह तो हो ही नहीं सकता कि पांच देह उसको दूसरे जन्म में मिलें, और एक से वैकुण्ठ को जाय, एक से देवी लोक को, एक से सूर्य लोक को, और एक से गणपति लोक को चला जाय, यदि ऐसा हो तब तो एक जीव को एक साथ पांच देह की

प्राप्ति का प्रमाण कहीं अवश्य होता सो तो है नहीं तब उसको एक ही देह और एक ही लोक मिलेगा।

और एक भी वही मिलेगा जिस देवता में उसकी प्रीति विशेष होगी। जब प्रीति एक में विशेष और चारों में न्यून है तब सबको समान भाव से मानना न ठहरा और जो सबको समान भाव से प्रीति करते हैं तो मृत्यु के अनन्तर गति में गड़बड़ पड़ता है। इसी से स्मार्त्त धर्म चाहे कहने के लिये हो पर अनुष्ठान के लिये नहीं है। सुनने में तो बड़ा अच्छा लगता है आहा सब समान हो जांयगे पर होना सर्वथा असम्भव है।

भला विचारना चाहिये कि एक पुरुष दो स्त्रियों को समान भाव से नहीं देख सकता है, एक पिता दो पुत्रों को समान भाव से नहीं देख सकता है। एक मित्र दो मित्रों को समान भाव से नहीं देख सकता है तब एक साधक पांच इष्टदेवताओं को समान भाव से देखता हो आश्चर्य है!। वास्तव में साम्यभाव है भी नहीं जब स्मार्त्त जन एक को मुख्य (अंगी) मानकर मध्य में स्थापन कर पूजते हैं और चारों को अंग (आवरण) मानकर इधर-उधर पूजन करते हैं। तब साम्य कहां रहा? ॥

समाधान–पाठक महाशयो! वैष्णव सम्प्रदायों में अच्छे २ विद्वान् शास्त्र मर्यादा के जानने वाले अब भी विद्यमान हैं इस कारण यह नहीं कह सकते कि शास्त्र मर्यादा को वैष्णव लोग नहीं जानते। परन्तु हम यह बात बिना संकोच कह सकते हैं कि हमारे गोस्वामी जी प्रस्थानत्रय का भी मर्म ठीक नहीं जानते। हमारे गोस्वामी स्मार्त्त धर्म के लिये कहते हैं कि " वह आगे बढ़ने का पथ नहीं। परन्तु स्थिर रहने का पथ है " सो यह उनकी बड़ी भूल है। वास्तव में श्रौत स्मार्त्त धर्म ही बेखटक आगे बढ़ने का मार्ग है। चौराहे का दृष्टान्त इस कारण ठीक नहीं है कि ईश्वर परमात्मा अनेक नहीं किन्तु वे सब अनेक नाम रूपों में अवस्थित एक ही वस्तु हैं। अनेकेश्वर वाद वा द्वैतवाद के मन में घुसा होने से गोस्वामी ने ऐसा लिखा है। स्मार्त्त धर्म सर्वथा वेदानुकूल है। और श्रौत स्मार्त्त दोनों रीति से वेद में अनेक देवताओं का पूजन है। नित्य के अग्निहोत्र में सायंकाल में प्रजापति और अग्नि तथा प्रातःकाल में प्रजापति और सूर्य देवता के नाम से आहुति दी जाती है। और दर्शपौर्णमासादि सभी इष्टियों तथा स्मार्त्त होमों के प्रारम्भ में दो आघार तथा दो आज्यभाग ये चार आहुति प्रधान होम से पूर्व चार देवताओं के लिये दी जाती हैं। जिनमें १–प्रजापति २–इन्द्र ३–अग्नि ४–सोम।

इसके सिवाय प्रधान याग में जितने देवता जिस याग में नियत हैं उन सब के लिये पृथक् २ आहुति दीजाती है जिन २ के नामसे आहुति दीजाती हैं उनका आवाहनादि भी होता है। इस प्रकार प्रत्येक श्रौतस्मार्त्त इष्टि वा होम में एक साथ अनेक देवताओं का होम द्वारा पूजन होता है। इसी के अनुसार नित्य नैमित्तिक देव पूजन में पांचों देवताओं का पूजन किया जाता है। जैसे हमारे भारत वर्ष का कोई रईस जब कभी गवर्नमेंट को प्रसन्न रखने के लिये कलक्टर साहब आदि की जाफत करना चाहता है तब जिन २ हाकिमों से उस रईस का ताल्लुक होता उन सभी का पूजन यथाशक्ति करता है। क्योंकि उस रईस को यह भी भय होता है कि यदि कोई हाकिम छिक जायगा वा छूट जायगा तो वह अपना अपमान समझता हुआ बुरा मानेगा कि अमुक रईस ने हमें कुछ नहीं समझा। जब तक किसी का सत्कार न करे तब तक तो कोई भी बुरा नहीं मानता पर जब करता है तब किसी का सत्कार करे किसी का न करे यह बात लोक में नहीं बनती वैसे ही यहां शास्त्र मर्यादा में भी जिस २ कर्म में जिस २ देवता का पूजन शास्त्र से नियत है वहां वैसा ही करना चाहिये। इस विषय में सनातनधर्मियों के लिये दक्ष प्रजापति के यज्ञ का स्मरण दिला देना पुष्कल है कि जिस में शिव जी को भाग नहीं दिया जिस से यज्ञ के विध्वंस की विपत्ति दक्ष को भोगने पड़ी। हमारे गोस्वामी जब स्मृतियों को नहीं मानते तो कदाचित् पुराणों को भी न मानें तब उन के लिये लौकिक दृष्टान्त ही बहुत है। क्योंकि जब कभी उत्सवादि में गोस्वामी अपने मान्य पुरुषों को आवाहन करके निमन्त्रण देते हैं तब क्या किसी मान्य को बुलाते और किसी को छोड़ देते हैं?। अर्थात् जैसे उत्सव निमन्त्रणादि में सभीलोग अपने सब मान्यों को बुलाते हैं वैसे ही पूजन के समय सभी देवताओं का आवाहन पूजन होना चाहिये। क्योंकि हमारे लिये सभी देवता मान्य हैं। "स्मार्त्तधर्म चौराहे के समान है" इस में कोई प्रमाण नहीं है। यह दृष्टान्त विषम इस लिये है कि चौराहे पर खड़ा कोई एक मनुष्य किसी एक ही रास्ते पर जा सकता है सब रास्तों पर एक काल में चल सकना असम्भव है। परन्तु कालान्तर में भिन्न २ सभी रास्तों पर वही मनुष्य यथावसर जाया ही करता है। और एक स्थान पर बैठा एक मनुष्य एक ही समय में क्रमशः अनेक देवताओं का पूजन करता है यह असम्भव नहीं है इसी लिये सहस्रों स्मार्त्तधर्मी लोग अनेक देवताओं का पूजन प्रतिदिन करते

ही हैं। यदि चार मार्गों पर एक समय में चलने के तुल्य अनेक देवताओं का पूजन भी असम्भव होता तो जैसे एक साथ चार मार्गों पर एक मनुष्य नहीं चल सकता वैसे कई देवताओं की पूजा भी कोई न कर पाता पर यह प्रत्यक्ष से विरुद्ध है। यदि कहें कि जैसे कई देवताओं का पूजन क्रम से ही किया जायगा वैसे ही क्रमशः कई रास्तों पर भी एक मनुष्य चल सकता है तब दृष्टान्त विषम कैसे हुआ ?। इस प्रकार दृष्टान्त को लगाया जाय तब तो हमारे ही पक्षका साधक दृष्टान्त बन गया। और गोस्वामी का पक्ष कट गया कि एक मनुष्य, चौराहे पर खड़ा जैसे कई मार्ग से चल ही नहीं सकता वैसे कई देवताओं का पूजन हो ही नहीं सकता। अब रहा यह विचार कि „पाञ्च देवताओं का पूजन करने वाला मरणानन्तर किस लोक को जावेगा ? क्या पांच रूप धर कर पांचो देवताओं कें लोकों में जा सकता है ? तब इस के लिये कोई प्रमाण नहीं है।" इस का संक्षेप समाधान यह है कि गोस्वामी के मन में भेदवाद घुसा हुआ है और भेदवाद में ही ऐसी अनेक शंका उत्पन्न हुआ करती हैं जिन की संख्या भी नहीं हो सकती। परन्तु वेद का सिद्धान्त अभेद अद्वैतवाद परक है। जिस पर अनेक वाद विवाद हो जाने पर भी वेद का अभेद वाद ही प्रधान पड़ता है। वेद के सिद्धान्त से भेद वादियों को मोक्ष प्राप्त ही नहीं हो सकता—

तदेवाग्निस्तदादित्यस्तद्वायुस्तदुचन्द्रमाः। तदेवशुक्रंतद्ब्रह्म ताआपःसप्रजापतिः॥ शु० य० ३२। १। इन्द्रंमित्रंवरुणमग्निमाहुरथोदिव्यःससुपर्णोगरुत्मान्। एकंसद्विप्राबहुधा वदन्त्यग्निं यमंमातरिश्वानमाहुः॥ ऋ० १। १६४। ४६॥ रूपंरूपंप्रतिरूपोबभूब तदस्यरूपंप्रतिचक्षणाय। इन्द्रोमायाभिःपुरुरूपईयते॥ ऋ० ६। ४७। १८॥ अग्निर्यथैकोभुवनंप्रविष्टो रूपंरूपंप्रतिरूपोबभूव। तथाह्ययंसर्वभूतान्तरात्मा रूपंरूपंप्रतिरूपोबहिश्च॥ इति कठोपनिषदि।

पुरुषएवेदꣳसर्वं यद्भूतंयच्चभाव्यम्॥ य० ३१। २ पादोऽस्यविश्वाभूतानि त्रिपादस्यामृतंदिवि॥ य० ३१। ३॥ सओतःप्रोतश्चविभूःप्रजासु॥ यजु० अ० ३२। ८॥ यस्मिन्त्स-

र्वाणिभूतान्यात्मैवाभूद्विजानतः। तत्र कोमोहःकःशोकएक-त्वमनुपश्यतः॥ य० अ० ४०। ७॥ रूपंरूपंमघवाबोभवीति मायाःकृण्वानस्तन्वंपरिस्वाम्॥ ऋ० ३। ५३। ८॥

अर्थः–अग्नि, वायु, आदित्य, चन्द्रमा, शुक्र, प्रजापति और गंगाजल के नाम रूप में वही एक ब्रह्म विद्यमान है। यद्यपि यहां मन्त्र में सामान्यतया 'आपः' जल को ब्रह्म कहा है तो भी प्रधान अप्रधान के प्रसंग में प्रधान का ग्रहण होना शास्त्रानुकूल होने से तथा–

स्रोतसामस्मिजान्हवी॥

इस भगवान् के कथित प्रमाणानुसार 'आपः' शब्द से गंगाजल का ग्रहण करना उचित ही है। इन्द्र, मित्र, वरुण, अग्नि, दिव्यसुपर्ण, गरुत्मान्, यम, वायु, इत्यादि सब नाम रूप एक ही सद्वस्तु परमात्मा के इस लिये हैं कि वह प्रत्येक वस्तु में उसी २ के नाम रूप से विद्यमान है। अग्नि में अग्नि के नाम रूप से और जल में जल के नाम रूप से विद्यमान है। परन्तु वे अग्नि वायु आदि के रूप कहने मात्र के लिये हैं कि जैसे जल की तरंग सुवर्ण के आभूषण और सूत के अनेक कपड़े कहने मात्र के लिये हैं किन्तु तत्त्वज्ञानके विचार से शोचो तो जल से भिन्न तरंग सुवर्ण से भिन्न आभूषण तथा सूत से भिन्न कपड़े कुछ चीज नहीं हैं क्योंकि जल, सुवर्ण और सूत की ही एक २ हालत का नाम तरंग आभूषण और वस्त्र कहने के लिये है। तरंगादि में जलादि से भिन्न वस्तु कुछ नहीं बदला है। वैसे ही परमात्मा के अनेक नाम रूप कहने मात्र के लिये हैं बास्तव में वह एक शुद्ध चेतन निर्लेप अविकारी वस्तु है। परमेश्वर अपनी माया नाम प्रकृति के साथ बहुत रूपों वाला प्रतीत होता है। ऐसे ही मन्त्रों का अभिप्राय देख कर सब वेदों के भाष्य कार श्रीसायणाचार्यजी ने ऋग्वेदभाष्य भूमिका में लिखा है–

यद्यपीन्द्रादयस्तत्रतत्र हूयन्ते तथापि तस्यैवेन्द्रादिरू-पेणावस्थानादविरोधः॥

यद्यपि इन्द्रादि अनेक देवताओं का उन २ यज्ञादि कर्मों में पृथक् २ आवाहनादि कृत्य वेदों में लिखा है तथापि वही एक परमेश्वर इन्द्रादि रूप से अवस्थित है इस कारण एकेश्वरवाद वा एकात्मवाद में कुछ विरोध नहीं है। प्रयोजन यह कि एकात्मवाद निर्विकल्प सिद्ध है।

जैसे अग्नि प्रत्येक पदार्थ में प्रविष्ट होके उसी २ के रूप से उस २ में विद्यमान है वैसे ईश्वर भी उस २ देवतादि में उसी २ नाम रूप से विद्यमान और सब से पृथक् भी है पत्थर में पत्थर के ही नाम रूप से विद्यमान है जो यह जगत् प्रत्यक्ष दीखता जो भूतकाल में हो चुका जो भविष्य में होने वाला है वह त्रिकालस्थ जगत् ईश्वर ही है अर्थात् पुरुष से भिन्न कुछ वस्त्वन्तर नहीं है। इस व्यापक पुरुष परमेश्वर के एक चतुर्थांश में यह सब जगत् प्रकट हुआ और तीन अंश से वह सदा अविनाशी निराकार रहता है वह परमेश्वर इस प्रजा में ओत प्रोत हो रहा है। जैसे कपड़े में सूत ओतप्रोत है तब सूत से भिन्न कपड़ा कोई वस्तु सिद्ध नहीं होता वैसे ही जगत् भी ईश्वर से भिन्न कुछ वस्तु नहीं है। जब मनुष्य को ठीक २ ज्ञान होजाता है तब सब वस्त्रों में सूत ही सूत दीख पड़ने के तुल्य एक ही चेतन आत्मा सब प्राणियों में दीखने लगता है उस काल में एकत्व सब को देखने वाले को कौन मोह (अज्ञान) और कौन शोक बाकी रह सकता है? । अर्थात् मोह शोकादि सब भेदवाद में ही संघटित होते हैं । सब धनाद्यैश्वर्यों का स्वामी परमात्मा प्रकृतिस्थ पदार्थों के अनेक रूपों को वार २ अपना शरीर बनाता है । यहां क्रिया समभिहार में यङ्लुगन्त प्रयोग वेद में आया है जिस से वार २ अनेक रूप धारण करना सिद्ध है । एक ही परमात्मा अनेक देवता रूप होता है इसके लिये प्रश्नोत्तर पूर्वक बहुत स्पष्ट मैत्र्युपनिषद् के ४ । ५ प्रपाठकों में लिखा है—

अथोत्तरं प्रश्नमनुब्रूहीति। अग्निर्वायुरादित्यः कालो यः प्राणोऽन्नं ब्रह्मा रुद्रो विष्णुरित्येकेऽन्यमभिध्यायन्त्येकेऽन्यं श्रेयः कतमो यः सोऽस्माकं ब्रूहीति तान् होवाचेति ॥ ५ ॥ ब्रह्मणो वावैता अग्र्यास्तनवः परस्यामृतस्याशरीरस्य तस्यैव लोके प्रतिमोदतीह यो यस्यानुषक्तइत्येवं ह्याह। ब्रह्म खल्विदं वाव सर्वम्। या वास्या अग्र्यास्तनवस्ताअभिध्यायेदर्चयेन्निन्हुयाञ्चातस्ताभिः सहैवोपर्युपरिलोकेषु चरत्यथ कृत्स्नक्षयएकत्वमेति पुरुषस्य पुरुषस्य ॥ ६ ॥ इति मैत्र्युपनिषदि चतुर्थः प्रपाठकः । अथ यथेयं कौत्सायनीस्तुतिः ॥ त्वंब्रह्मात्वंचवैविष्णु—स्त्वंरुद्रस्त्वंप्रजापतिः । (शेष आगे)

ब्रां० स० अं० ६ पृ० २६८ से आगे वे० प्र० का खण्डन ॥

अब इस पितृयज्ञ के व्याख्यान में तु० रा० ने एक बात लिखी है कि "यम शब्दार्थ का विचार" इस हेडिंग के लेख में तु०रा० ने मन माना सिद्धान्त यह लिखा है कि "पितृगणों सहित यम कोई प्राणी नहीं है किन्तु एक वायु विशेष है" इसकी पुष्टि के लिये तु० रा० को शास्त्रों में कोई पुष्ट प्रमाण नहीं मिला । सो मिथ्या बात के लिये प्रमाण आवेगा ही कहां से ? । मध्यस्थान देवता क्या सब वायु रूप हैं ? । यदि ऐसा है तो तु० रा० बतावें कि इन्द्र चन्द्रमा, सरमा, सरस्वती आदि भी मध्यस्थान देवता हैं वे कौन २ से वायु हैं ? । और जब निघण्टु के दो खण्डों में परिगणित सब मध्यस्थान देवता वायु के भेद सिद्ध नहीं होते तो यम के लिये भी तु० रा० का व्यर्थ उद्योग है ।

यमो यच्छतीति सतः । निरु० १०।१९ ॥

इस प्रमाण को लिख कर तु० रा० लिखते हैं कि "यम वह है जो देह त्याग कर निकले हुए जीवात्माओं को जन्मान्तर में दूसरे देह तक पहुंचाता है" पाठक लोग शोचें इतना अर्थ किन पदों से निकल पड़ा ? । निरुक्त में केवल चार पद हैं । उनका अर्थ निरुक्त के टीकाकार दुर्गाचार्य करते हैं कि—

यच्छति उपरमयति जीवितात्सर्वं भूतग्राममिति यमः ॥

जो सब प्राणियों को जीवन से उपराम कराता अर्थात् प्राणियों के जीवन को समाप्त (खतम) करता वह यम है । बस इसके सिवाय अन्य कोई प्रमाण तु० रा० को नहीं मिला । अब तु० रा० को पूछना चाहिये कि "दूसरे देह तक पहुंचाता है" क्या यह अर्थ यच्छति क्रिया का हो सकता है ? । यदि हो सकता है तो किस प्रमाण से ? । यद्यपि यम का व्याख्यान बहुत बड़ा हो सकता है जिस को कई २ फारम कई अङ्कों में लिखा जाने पर पूरा हो सके, पर इतना अधिक लिखने से पाठक लोग घबड़ायेंगे । इस लिये हम यहां संक्षेप से थोड़ा सा विचार यम शब्दार्थ पर लिखते हैं । कलकत्ते के छपे शब्द स्तोम महानिधि कोश में यम शब्द का अर्थ यह लिखा है कि—

प्राणिनां शुभाशुभकर्मानुसारेण दण्डविधायके ईश्वरानुयुक्ते, दक्षिणस्थे देवभेदे ॥

भाषा—प्राणियों को उन २ के शुभ अशुभ कर्मों के अनुसार फल देने

वाले ईश्वर की आज्ञा से नियत हुए दक्षिण दिशा के स्वामी एक खास देव का नाम यम है। अमरकोश-

धर्मराजःपितृपतिः समवर्त्तीपरेतराट्।
कृतान्तोयमुनाभ्राता शमनोयमराड्यमः॥
कालोदण्डधरःश्राद्ध—देवोवैवस्वतोऽन्तकः॥

भाषा-धर्मराज, पितृपति, समवर्त्ती, परेतराट्, कृतान्त, यमुनाभ्राता, शमन, यमराट्, यम, काल, दण्डधर, श्राद्धदेव, वैवस्वत और अन्तक ये तेरह नाम यमराज के हैं। इन में कोई भी ऐसा शब्द नहीं जिस से वायु समझा जावे। अमरकोश में कहे यमराज के नामों से वे ही यमराज समझे जाते हैं कि वेद में मृत्यु को जिनका दूत कहा है यथा-

मृत्युर्यमस्यासीद्दूतः प्रचेता असूनृपितृभ्योगमयांचकार॥ अथर्व० १८।२।२७॥

अर्थ-मृत्यु यमराज का बुद्धिमान् दूत है कि जो मरे हुये प्राणियों के प्राणों को पितर होने के लिये यमलोक में ले जाता है। अर्थात् वेद में जिन का दूत मृत्यु है उन को यम बतलाया है। यहां तु० रा० बतावें कि वायु का ग्रहण कैसे हो सकता है?। वायु शब्द का अर्थ गमनशील होना प्रधान है क्योंकि (वाति गच्छतीति वायुः । वा गतिगन्धनयोः) गत्यर्थ वा धातु से वायु शब्द सिद्ध होता है जो चला करै वा चलाया करे वह वायु है और (यम उपरमे। यच्छति जीवनचेष्टामुपरमयतीति यमः) प्राण तथा शरीरेन्द्रियों की चेष्टा को जो रोक देता बन्द करता वा खतम कर देता है वह यम है इस प्रकार वायु और यम शब्दों का व्याकरणानुसार भी अर्थ विरुद्ध है इस से भी वायु का नाम यम नहीं हो सकता किन्तु यम एक देवता है जिस के लिये वेद में लिखा है कि—

योममारप्रथमोमर्त्यानां यःप्रेयायप्रथमोलोकमेतम्। वैवस्वतंसंगमनंजनानां यमंराजानंहविषासपर्यत॥ १३॥ अथर्व० कां० १८। अनु० ३॥

अर्थ-महा प्रलय के बाद होने वाली सृष्टि के आरम्भ में मनुष्यों में से जो सब से पहिले मरता और जो इस यम लोक में पहिले ही जाता है, जो

विवस्वान् का पुत्र है, और मनुष्य मर मर कर जिस के समीप जाते हैं ऐसे राजा यम की पूजा होम यज्ञ के द्वारा मनुष्य लोग करें। क्या इस मन्त्र में कहा यम शब्द का अर्थ वायु मात्र में घट सकता है? अर्थात् कदापि नहीं। इसलिये तु० रा० का मिथ्या प्रलापमात्र वेद विरुद्ध होने से खण्डन करने योग्य है ॥

आगे वे० प्र० पृ० १३ से १८ तक में कोई भी बात ऐसी नहीं दीखती जिस का उत्तर दिया जाय। जो कुछ सम्पादक ब्रा० स० को बुरा भला कठोर लिखा है उस का उत्तर यही हो सकता है कि वे०प्र० सम्पादक को बुरा भला लिखा जाय पर सत्पुरुषों को यह कदापि उचित नहीं है।

अब रहा मूर्त्ति पूजा के विषय में अनेक आक्षेप सो मूलांश को छोड़कर इधर उधर भागने से तु० रा० आदि समाजियों को कुछ भी कभी हाथ न लगेगा। उचित तो यह है कि वे लोग अपने समाजी नियम के अनुसार सत्य का ग्रहण और असत्य का परित्याग करने का उद्योग करें। मिथ्या ग्रहण का हठ दुराग्रह छोड़ें। स्वा० द० से तथा आ० समाजियों से लेशमात्र भी हमें द्वेष नहीं यह बात हम शपथ पूर्वक सत्य २ लिख देते हैं परन्तु वेदशास्त्र से विरुद्ध मिथ्या असत्य तथा अधर्म से अवश्य हमारा द्वेष है। क्या अब तक मुन्शी जगन्नाथदास आदि अनेक महाशयों ने स्वा० दयानन्द की सैकड़ों भूलें ऐसी नहीं दिखा दी हैं कि जिन को किसी भी मनुष्य से एकान्त में शपथ पूर्वक पूछो तो वही उन बातों को निर्विकल्प भूलें ही स्वीकार करेगा। मूर्त्तिपूजा विषय में हम बहुतसा विचार अब तक युक्ति प्रमाणों से पुष्ट कर २ लिख चुके हैं। जिस में परमेश्वर का साकार निराकार दो रूप होना जो सिद्ध किया है वह मूर्त्ति पूजा का मूल है। साकार ईश्वर की मूर्त्ति बनाते पूजते हैं निराकार की कोई नहीं बनाता न बना सकता है। जो २ निराकार व्यापक वस्तु हैं वे सब युक्ति से भी साकार सिद्ध होते हैं। इस विषय में हम (उभयं वा एतत्प्रजापतिः परिमितश्चापरिमितश्च०) इत्यादि प्रमाण भी दे चुके हैं जिन युक्ति प्रमाणों का खण्डन भी कोई कर ही नहीं सकता क्योंकि वे सत्य हैं खण्डन मिथ्या का होता है। तब यदि पक्षपात छोड़ कर ईश्वर का साकार होना मान लिया जाय तो मूर्त्ति पूजा भी मान लेनी पड़े तब भोग लगाने बुलाने जगाने स्नान कराने आदि में जो २ सन्देह होते हैं वे सब निवृत्त हो सकेंगे। रस्सी में सांप

की जो भ्रान्ति होती है वह जब तक दूर न हो अर्थात् यह निश्चय न हो जाय कि वास्तव में यह रस्सी है तब तक सांप सम्बन्धी अनेक सन्देह उठा ही करेंगे। इसी के अनुसार वास्तव में एक परमात्मा ही सत् चित् आनन्द रूप है। अन्य कोई भी सच्चिदानन्द नहीं है। अन्य सभी असत् है इसलिये कठश्रुति में स्पष्टतया लिखदिया है कि—

अस्तीत्येवोपलब्धव्यस्तत्त्वभावेनचोभयोः।

अर्थः—अस्ति नाम है बस इसी प्रकार ईश्वर को प्राप्त करना चाहिये। यदि अन्य पदार्थों को भी अस्ति कहा जाय तो वे भी सत् हो जायंगे। तब सैकड़ों लाखों सच्चिदानन्द हो सकते हैं पर वेद का सिद्धान्त यह है कि सच्चिदानन्द एक ही परमेश्वर है तब जो २ पत्थर लकड़ी मट्टी आदि कहे जाते हैं वे सब उसी की सत्ता से सत् हैं अपनी सत्ता से वास्तव में कुछ नहीं हैं इसलिये वही एक सत् ठहरता है। संसार में खास २ मूर्त्तियों में उस की पूजा उपासना करते २ पृथिवी पहाड़ वृक्ष जल मनुष्य पशु पक्षी आदि असंख्य मूर्त्तियों में वही एक सद् वस्तु दीखने लगे कि जैसे विचार पूर्वक देखने वाले को सभी वस्त्रों में केवल सूत ही सूत ओत प्रोत दीखता है। वैसे ही सब पदार्थों में व्यापक एक ईश्वर ही दीखने लगे यही मूर्त्ति पूजा का मुख्य प्रयोजन है। सो यदि आ० समाजी लोग युक्ति प्रमाण सिद्ध ईश्वर के साकार सगुण रूप को स्वीकार कर लें तो उन को फिर छोटी २ वा तुच्छ शंका उत्पन्न कदापि नहीं।

एक वार रेल में जाते हुए आ० समाज के एक उपदेशक जो शास्त्री पास थे हमें मिल गये तथा एक ही कमरे में हम और वे महाशय बैठे थे। जब हमें ज्ञात हुआ कि ये उपदेशक महाशय आर्यसमाजी तथा शास्त्री परीक्षा में पास हैं। तब हमें स्मरण आगया कि शास्त्री परीक्षा निरुक्त में भी होती निरुक्त भी पढ़ने पड़ता है। इस से नम्रता के साथ हमने उक्त शास्त्री जी से पूछा कि आपने शास्त्री परीक्षा दी है तो निरुक्त का दैवत काण्ड भी पढ़ा होगा देखिये निरुक्त अ० ७ पाद २ खण्ड ६ में लिखा है कि—

अथाकारचिन्तनं देवतानां पुरुषविधाः स्युरित्येकं०० अथापि पौरुषविधिकैरङ्गैः संस्तूयन्ते। ऋष्वा त इन्द्र स्थविरस्य बाहू०। ऋ० ४। ७।३१।३। यत्संगृभ्णा मघवन् काशिरित्ते। ऋ० ३।२।१।५। अथापि पौरुषविधिकैर्द्रव्यसं-

योगैः—आ द्वाभ्यां हरिभ्यामिन्द्र याहि ॥ ऋ० २। ६। २१। ४। कल्याणीर्जाया सुरणं गृहे ते। ऋ० ३। ३। २०। १ ॥ अथापि पौरुषविधिकैः कर्मभिः—अद्धीन्द्र पिब च प्रस्थितस्य। ऋ०-८।६।२१।२ आश्रुत्कर्ण श्रुधी हवम् ॥ ऋ० १।१। २०। ३ ॥

अर्थ—अब देवताओं के आकार का विचार किया जाता है कि देवता कैसे हैं ? इसका उत्तर है कि- देवता मनुष्य के तुल्य आकार वाले हैं यह एक पक्ष है। क्योंकि वेद में पुरुष के तुल्य अङ्गों के सहित देवताओं की स्तुति की गयी है कि (ऋष्वातइन्द्र) हे इन्द्र (स्थविरस्य) वड़ी शक्ति वाले तुम्हारे दो बड़े२ बाहू भक्तों को सहारा देने वाले हैं उन दोनों हाथों की हम स्तुति करते हैं (यत्संगृभ्णा मघवन् काशिरित्ते) हे इन्द्र मघवन् जो तुम अपनी मूठी में आकाश पृथिवी वा द्यु लोक और भूर्लोक को पकड़े हुए हो यह बड़ाआश्चर्य्य वा तुम्हारी महिमा की प्रशंसा है। और मनुष्य के जैसे पदार्थों के साथ संयुक्त देवताओं की स्तुति की गयी है। यथा हे(इन्द्र) इन्द्र (द्वाभ्यांहरिभ्यामायाहि) दो घोड़ों की सवारी द्वारा आइये तथा हे इन्द्र (कल्यणीर्जाया०)तुम्हारी स्त्री कल्याण कारिणी और तुम्हारे घर में सुवर्ण है। तथा मनुष्यों केसे कर्मों के द्वारा देवताओं की स्तुति की गयी है यथा(अद्धीन्द्र०) हे इन्द्र प्रस्थित नामक सोमरसादि हविष् को खाओ और पियो। यहां शेषत्वेन विवक्षित प्रस्थित कर्म में षष्ठी विभक्ति हुई है। तथा(आश्रुत्कर्ण०)जिन के कान विना रोक टोक सर्वत्र सुन सकते हैं ऐसे हे इन्द्र हमारी पुकार को अच्छी तरह सुनिये। इत्यादि वेद मन्त्रों में साफ २ साकार इन्द्र की स्तुति निरुक्तकार ने दिखाई है। और आर्यसमाजी मत में ईश्वर निराकार है तथा ईश्वर से भिन्न सब देवता अग्नि आदि जड़ हैं। तब यह दो भुजा वाला इन्द्र कौन है ?। क्या इस निरुक्त का अर्थ आप ने और कुछ समझा है ? तो हमें भी समझा दीजिये। इस पर समाजी उपदेशक शास्त्री महाशय ने यह कह कर टाल दिया कि अब जहां सुरीर में चलते हैं वहीं इस का जबाव देंगे इस प्रकार तत्काल अपना पल्ला छुड़ाया। अब हम पाठकों से निवेदन करते हैं कि वे लोग समाजियों से यही बात पूछें कि तुम तो ईश्वर को निराकार मानते हो तब यह साकार इन्द्र कौन है कि जिसके दो हाथ, और हाथ की मुट्ठी, जो दो घोड़ों की सवारी पर चलता, जिसकी स्त्री कल्याण कारिणी, जिसके घर में सुवर्ण है

जो मनुष्य की तरह खाता पीता सुनता है यह कौन इन्द्र है? । क्या ये बातें निराकार में घट सकेंगीं? । तथा वेद में एक मन्त्र यहभी आता है कि-

इन्द्राणीमासुनारिषु सुभगामहमश्रवम् । नह्यस्याअपरंचन जरसामरतेपतिर्विश्वस्मादिन्द्रउत्तरः ॥ अथर्व० कां० २० सू० १२६ । मं० ११ ॥

अर्थ-कि हमने इन संसार भर की स्त्रियों से अधिक सौभाग्यवती इन्द्राणी को सुना है क्योंकि उस का पति इन्द्र न तो बदलता और न तो बूढ़ा होकर कभी मरता है अर्थात् उन को जरावस्था कभी नहीं आती इसी लिये इन्द्रादि देवताओं को अमरकोशादि में निर्जर कहा है । अब इसका उत्तर तु० रा० से भी मांगना चाहिये । कि ये वेदोक्त इन्द्र महाशय कौन हैं? ॥

आगे तु० रा० ने १९ । २० पृष्ठों में (उद्धयं०) मन्त्र का अर्थ महा अशुद्ध लिखा है जिस में मन्त्र की पादव्यवस्था और (तमसः) पद की विभक्ति तक का बोध न होना साफ २ झलक रहा है तब ऐसे लोग वेद का जो कुछ अनर्थ करें सोई थोड़ा है । यदि किसी धर्मात्मा क्षत्रिय का राज भारत वर्ष में होता तब भी क्या ये लोग ऐसा वेद का अनर्थ कर पाते? अर्थात् कदापि नहीं ॥

अहिंसा परमोधर्मः ॥

इस ऊपर लिखे वाक्य को सामान्य कर प्रायः सभी मतानुयायी लोग मानते हैं । पर इस अहिंसा धर्म का ऊपरी चिन्ह दया है । इस दया को सब जगह विचार पूर्वक देखोगे तो सब से अधिक दया सनातनधर्मियों में स्पष्टतया मिलेगी । सनातनधर्मी हिन्दुओं की ओर से देश भर में सैकड़ों धर्मशाला सैकड़ों सदावर्त्त जारी हैं जिन में सहस्त्रों मनुष्यों को प्रति दिन भोजन मिलता और आज कल जैसे प्रचण्ड ग्रीष्म ऋतु में सदा ही सैकड़ों पानीयशाला (प्याऊ) बैठी हुई हैं । जहां मनुष्य पशु पक्षी आदि सहस्त्रों प्यासे प्राणियों को जल पीने को मिलता है । गोरक्षा के लिये समाजियों ने प्रथम २ बहुत हल्ला मचाया पर वह ऐसी कम समझी से चलाया गया कि जिस के होने से अनेक उपद्रव हुए हिन्दु मुसलमानों में बहुत खटकी जिस के कारण वृटिस-गवर्नमेण्ट की तिरछी निगाह देख कर आ० समाजी लोगों ने गोरक्षा को सर्वथा इस्तीफा दे कर छुट्टी पायी । परन्तु सनातनधर्मी लोगों की ओर से अब भी अनेक नगरों में सहस्त्रों गौओं की रक्षा की जा रही है । हजारों रु-

यथा अब भी गोरक्षा के लिये खर्च हो रहे हैं। इस प्रकार के अनेक काम सनातनधर्म के लोगों में हो रहे हैं जिन का उद्देश दया और अहिंसा धर्म की रक्षा करना है परन्तु ऐसा होने पर भी सनातनधर्मी लोग अहिंसा धर्म का झंडा नहीं उड़ाते। अब इन आर्यसमाजियों की ओर देखिये जिन की ओर से एक भी सदावर्त्त नहीं, कहीं एक भी प्याऊ नहीं, गोरक्षा का काम नहीं, भिक्षुक को मुट्ठी भर अन्न नहीं दिया जाता। हां कई अनाथालय अवश्य अपना मत बढ़ाने के लिये कर रक्खे हैं जिन में जो कोई नीच ऊंच अनाथ मिला उस को रख के समाजी बनाया और अनाथ रक्षा के बहाने से चन्दा सब से लेते हैं। जिन लोगों में दया का कोई भी काम नहीं जो वाणीद्वारा सब को बुरा कह कह कर सब मत वालों को निरन्तर दुःख पहुंचाना रूप-हिंसा को ही अपना परम कर्त्तव्य मानते और मनु आदि के—

यथाऽस्योद्विजतेवाचा नालोक्यान्तामुदीरयेत् ॥

(जिस वाणी से अन्य प्राणियों को क्षोभ होता हो उसे न बोले) ऐसे वाक्यों का लेशमात्र भी उपदेश नहीं मानते। तथा जिन का उपदेश है कि अपनी हानि करने वाले जीवों को मार डालो क्या ऐसे लोगों को लज्जा शर्म संकोच कुछ न हो कि हम जो अहिंसा धर्म का मिथ्या ढोल बजाते हैं उस को देख कर सज्जन लोग क्या कहेंगे ! । "उलटा चोर कोतवाल को डांड़े" यही कहावत यहां चरितार्थ होती है।—

जब कि प्रमाण तथा युक्ति दोनों से यह सिद्ध होचुका है कि प्रत्यक्ष तथा अनुमान दोनों ही प्रमाण से जो अंश सिद्ध हो सकता है उस के लिये वेद प्रमाण नहीं है। यथा—

व्यवस्था पुनरग्निहोत्रं जुहुयात्स्वर्गकामइति लौकिकस्य स्वर्गे न लिङ्गदर्शनं न प्रत्यक्षम्। न्यायद० वात्स्यायनीयभाष्यम्।१।३। सू०—आप्तोपदेशसामर्थ्याच्छब्दार्थसम्प्रत्ययः ॥५०॥ भाष्यम्—स्वर्गः अप्सरसः उत्तराःकुरवः सप्तद्वीपाः समुद्रो लोकसन्निवेश इत्येवमादेरप्रत्यक्षस्यार्थस्य न शब्दमात्रात् प्रत्ययः किन्तर्हि आप्तैरयमुक्तः शब्द इत्यतः सम्प्रत्ययः ॥ अ० २ आ० १। सू० ५० ॥ सत्संप्रयोगे पुरुषस्येन्द्रियाणां बुद्धि

जन्म तत्प्रत्यक्षमनिमित्तं विद्यमानोपलम्भनत्वात् ॥ पूर्व-मी० १।१।४।

प्रत्यक्षेणानुमित्यावा यस्तूपायोनबुध्यते ।
एतंविदन्तिवेदेन तस्माद्वेदस्यवेदता ॥ १ ॥

सएवोपायो वेदस्य विषयः, तद्बोधएव प्रयोजनम्, तद्बोधार्थी चाधिकारी, तेन सहोपकार्योपकारकभावः सम्बन्धइत्यनुबन्धचतुष्टयम् ॥

अर्थ—प्रत्यक्षादि प्रमाण दो प्रकार से कार्य साधन करते हैं एक तो सब मिल के एक ही बात को सिद्ध करते हैं सो लौकिक उदारणों में ऐसा होता है। द्वितीय एक २ प्रमाण से एक २ भिन्न २ कार्य सिद्ध होता है यथा—स्वर्ग चाहने वाला अग्निहोत्र करे इस वेदोक्त उदाहरण में प्रत्यक्ष अनुमान दोनों का ही कुछ प्रयोजन नहीं केवल शब्द प्रमाण ही स्वतन्त्र काम देता है। तथा स्वर्ग, अप्सरा, उत्तर कुरु इत्यादि शब्दों का अर्थ केवल आप्तोपदेश के प्रामाण्य से माना जाता है किन्तु प्रत्यक्षांश कुछ न होने से अनुमान भी कुछ काम नहीं देता। पूर्व मीमांसाकार जैमिनि आचार्य का सूत्र है कि "विद्यमान वस्तु के साथ पुरुष के इन्द्रियों का मेल होने पर जो ज्ञान प्रकट होता उस को प्रत्यक्ष प्रमाण कहते हैं वह प्रत्यक्ष प्रमाण चोदना लक्षण वेदोक्त धर्म की जानने का निमित्त इस लिये नहीं हो सकता कि विद्यमान वस्तु की उपलब्धि प्रत्यक्ष से होती है और वैदिक धर्म का स्वर्गादि फल अभी विद्यमान नहीं किन्तु शरीर छोड़ने पर जन्मान्तर में प्राप्त होगा। जब प्रत्यक्ष धर्म ज्ञान का निमित्त नहीं तब प्रत्यक्ष पूर्वक होने से अनुमानोपमान भी वैदिकधर्म ज्ञान के हेतु नहीं हो सकते।" इस प्रकार प्रत्यक्षादि के विना वेद वाक्यों का प्रामाण्य होने से ही वेद स्वतःप्रमाण कहाता है। यदि प्रत्यक्षादि के विना वेद की सिद्धि न होतो वेद परतः प्रमाण हो जावे। इसी बात को वेद-भाष्यकारों (कुमारिल भट्टादि) ने बहुत स्पष्ट कहा है (प्रत्यक्षेणानुमित्या-वा०) धर्म, अर्थ, काम, और मोक्ष प्राप्ति के जिस अलौकिक उपाय का प्रत्यक्ष और अनुमान प्रमाण से बोध नहीं होता उस उपाय को जिस शब्द प्रमाण से वेदतत्त्वार्थ वेत्ता लोग जान लेते हैं उसी प्रमाण का नाम वेद है यही वेद का वेदपन है। (शेष आगे)

"सत्य का ग्रहण असत्य का त्याग"

वेद प्रकाश नामक पत्र में योग दर्शन के समाधि पाद के तृतीय सूत्र का भाषानुवाद देखकर मुझे बड़ा आश्चर्य हुआ कि अनुवाद कर्त्ता महाशय कहां तक योग सूत्र व्यास भाष्य, सांख्य और योग में क्या संबंध है समझे हैं?। यह बात इस सूत्र और योगदर्शन के अंतिम सूत्र को देखने से स्पष्ट ज्ञात होगी कि इन दोनों सूत्रों में परस्पर क्या संगति है। और समाधि पाद के द्वितीय वा चतुर्थ सूत्र से इन का क्या संबन्ध है॥

प्रथम इन सूत्रों का अर्थ व्यास भाष्य के अनुसार लिखकर पश्चात् उन में परस्पर संगति और सांख्य और योग का संबन्ध दर्शाया जावेगा–

सूत्र–तदा द्रष्टुः स्वरूपेऽवस्थानम्॥ १। ३॥ यो० द०

व्यासभाष्यम्-स्वरूपप्रतिष्ठा तदानीं चितिशक्तिर्यथा कैवल्ये, व्युत्थानचित्ते तु सति तथापि भवन्ती न तथा॥

भाषार्थ–(तदा) तिस काल में (जब असम्प्रज्ञातावस्था में सब वृत्तियों का निरोध हो जाता है तब) (द्रष्टुः) दृक्शक्ति रूप चेतन पुरुष की (स्वरूपे) अकलिप्त असंग निर्विकार स्वरूप निजरूप में (अवस्थानम्) अवस्थिति होती है अर्थात् जैसे कैवल्यावस्था में औपाधिक सात्विक राजस तामस रूप त्यागकर चिति शक्ति पुरुष अपने स्वाभाविक असंग चेतन रूप में स्थित होता है उसी प्रकार असम्प्रज्ञातावस्था में भी पुरुष स्वरूप प्रतिष्ठित हो जाता है इसका उदाहरण यह है–जैसे जपा कुसुम (गोड़हर का फूल) रूप उपाधि के अभाव से स्फटिक मणि अपने स्वच्छ रूप में अवस्थित हो जाता है तैसे बुद्धि वृत्ति रूप उपाधि के अभाव से पुरुष भी अपने स्वच्छ निर्विकार रूप में अवस्थित हो जाता है॥

नोट–चितिशक्ति, दृक्शक्ति, पुरुष, आत्मा ये शब्द एकार्थक हैं॥

अब महर्षि व्यास भाष्य के "स्वरूपप्रतिष्ठा तदानीं चितिशक्तिर्यथा कैवल्ये" को भगवान् पतञ्जलि के कैवल्य पाद के अंतिम सूत्र से मिलाइये-अंतिम सूत्र यह है:–

पुरुषार्थशून्यानां गुणानां प्रतिप्रसवः कैवल्यं; स्वरूपप्रतिष्ठा वा चितिशक्तिरिति॥ ४। ३४॥ यो० द०

इस से स्पष्ट है कि अंतिम सूत्र ही को व्यासने तृतीय सूत्र के भाष्य में लिया है अंतिम सूत्र पर व्यास भाष्य यह है–

कृतभोगापवर्गाणां पुरुषार्थशून्यानां यः प्रतिप्रसवः कार्यकारणात्मनां गुणानां तत्कैवल्यं, स्वरूपप्रतिष्ठा पुनर्बुद्धिसंत्त्वाऽनभिसंबन्धात् पुरुषस्य चितिशक्तिरेव केवला तस्याः सदा तथैवाऽवस्थानं कैवल्यमिति ॥

भावार्थ-(पुरुषार्थशून्यानां गुणानाम्) कृतार्थ होने से पुरुषार्थ से रहित बुद्धि आदि रूप से परिणत गुणों का जो (प्रतिप्रसवः) अपने २ कारणों में लय द्वारा प्रधान में लय वह (कैवल्यम्) पुरुष का कैवल्य जानना (वा) अथवा (स्वरूपप्रतिष्ठा) अपने शुद्ध रूप में प्रतिष्ठा रूप (चितिशक्तिः) चेतन शक्ति रूप पुरुष का हो जाना कैवल्य है अर्थात् पुरुष के भोग तथा अपवर्ग रूप पुरुषार्थ के संपादन से कृतार्थ हुए पुरुषार्थ शून्य कार्य कारण स्वरूप गुणों का जो प्रतिप्रसव अर्थात्-व्युत्थान-समाधि-निरोध इन तीनों के संस्कारों का मन में लय और मन का अहंकार में लय और अहंकार का लिंग रूप बुद्धि में लय और बुद्धि का गुण स्वरूप प्रधान में लय हो जाना यह पुरुष का कैवल्य जानना। अथवा बुद्धि सत्त्व के संग फिर कभी भी संबंध न होने से जो पुरुष का निरंतर केवल चिति शक्ति रूप मात्र से अवस्थान रूप स्वरूप प्रतिष्ठा वास्तव रूप से अवस्थान है वह कैवल्य जानना ॥

नोट-प्रसव और प्रतिप्रसव ये दो पारिभाषिक शब्द सांख्य शास्त्र के हैं और वे सृष्टि की उत्पत्ति (प्रसार या परिणाम) और पुरुष के मोक्ष का वर्णन करते हैं ॥

प्रथम पादका चतुर्थ सूत्र यह है-

वृत्तिसारूप्यमितरत्र ॥ १ । ४ ॥

व्यास भाष्य-व्युत्थाने याश्चित्तवृत्तयः तदविशिष्टवृत्तिः पुरुषः..............

(इतरत्र) व्युत्थान काल में अर्थात् निरोधकाल से भिन्न काल में (वृत्तिसारूप्यम्) चित्त की वृत्तियों के समान रूपत्व द्रष्टा का होता है अर्थात् व्युत्थान काल में जैसी २ चित्त की वृत्तियां उत्पन्न होती हैं सात्त्विक, राजस वा तामस वैसे २ रूप से ही पुरुष का भान होता है इत्यादि ॥

"फिर योगश्चित्तवृत्तिनिरोधः„ ॥ १ । २ ॥

सूत्र के अंत में भाष्यकार लिखते हैं-

„तदवस्थे चेतसि विषयाभावात् बुद्धिबोधात्मा पुरुषः किंस्वभावः" इति (पुरुषः जीवात्मा)

इस प्रकार समाधि पाद के २, ३ और ४ सूत्र और कैवल्य पाद के अंतिम सूत्र ३४ को और इन पर व्यासभाष्य के देखने से स्पष्ट है कि "तदा द्रष्टुः स्वरूपेऽवस्थानम्" सूत्र में "द्रष्टुः" का अर्थ केवल जीवात्मा है न कि परमेश्वर ॥ और द्रष्टुः वा जीवात्मा अर्थ करने से सांख्य और योगशास्त्र की संगति भी लग जाती है ॥

चेत रखना चाहिये कि सांख्य और योग एक दूसरे की पूर्ति करते हैं। वरन सांख्य में योग है और योग में सांख्य है एक दूसरे के विरुद्ध नहीं है। सांख्य ज्ञान कांड से अधिक संबन्ध रखता है और योग उपासना काण्ड से; दोनों का फल मोक्ष ही है। महर्षि व्यासने महर्षि पतञ्जलि के योग दर्शन पर अपने भाष्य में सांख्य और योग का सम्बन्ध सम्यक् प्रकार से दर्शाया है। और वह संबन्ध योग दर्शन के समाधि पाद के २, ३ और ४ सूत्र और कैवल्य पाद के ३४ सूत्र और उन पर व्यासभाष्य देखने से स्पष्ट ज्ञात है ॥

अब हम तुलसीराम स्वामी कृत योग दर्शन के अनुवाद पर आलोचन वा विचार करने के पहिले स्वामि दयानन्द ने अपने सत्यार्थ प्रकाश और ऋग्वेदादि भाष्य भूमिका नामक पुस्तकों में योग दर्शन पर कौनसा भाष्य माना है और उन सूत्रों (विशेष कर समाधि पाद के तृतीय सूत्र और कैवल्यपाद के अंतिम सूत्र) पर कैसा अनुवाद प्राकृत भाषा में किया है और अपनी प्रतिज्ञा कहां तक पूरी किई है इस विषय पर कुछ विचार करते हैं—

देखिये सत्यार्थ प्रकाश द्वितीयावृत्ति पृष्ठ ७१ "पूर्वमीमांसा पर व्यास मुनि कृत भाष्य पढ़ें पढ़ावें। पतञ्जलि मुनि कृत योग सूत्र पर व्यास मुनि कृत भाष्य पढ़ें पढ़ावें ॥"

फिर भी देखिये ऋग्वेदादि भाष्य भूमिका द्वितीयावृत्ति पृष्ठ १७१-१७२ और पृष्ठ १९०-१९२ ॥ तदा द्रष्टुः स्वरूपेऽवस्थानम् ॥ यो० द० १ । ३ ॥

यदा सर्वस्माद्व्यवहारान्मनोऽवरुध्यते तदाऽस्योपासकस्य मनो द्रष्टुः परमेश्वरस्य स्वरूपे स्थितिं लभते ॥

भावार्थ—जैसे जल के प्रवाह को एक ओर से दृढ़ बांध के रोक देते हैं तब वह जिस ओर नीचा होता है उस ओर चल के कहीं स्थिर हो जाता है इसी प्रकार मन की वृत्ति भी जब बाहर से रुकती है तब परमेश्वर में स्थित हो जाती है ॥

अत्र पतञ्जलिमहामुनिना स्वकृतसूत्रेषु वेदव्यासकृतभाष्ये चायमनुक्रमो योगशास्त्रे प्रदर्शितो नवा ?। यह प्रश्न है ॥

देखिये ऋग्वेदादि भाष्य भूमिका ॥

पुरुषार्थशून्यानां गुणानां प्रतिप्रसवः कैवल्यं स्वरूपप्रतिष्ठा वा चितिशक्तिरिति ॥ ४।३४॥ यो० द० ॥

भा०:—कैवल्य मोक्ष का लक्षण यह है कि (पुरुषार्थ) अर्थात् कारण के सत्त्वगुण रजोगुण और तमोगुण और उनके सब कार्य पुरुषार्थ से नष्ट होकर आत्मा में विज्ञान और शुद्धि यथावत होके स्वरूप प्रतिष्ठा जैसा जीव का तत्त्व है वैसा ही स्वाभाविक शक्ति और गुणों से युक्त होके शुद्ध स्वरूप परमेश्वर के स्वरूपविज्ञान प्रकाश और नित्य आनन्द में जो रहना है उसी को कैवल्य मोक्ष कहते हैं ॥

इस लेख से स्पष्ट सिद्ध हो गया कि स्वामी दयानन्द ने अपनी प्रतिज्ञा व्यास भाष्य मानने की तोड़ दिई पाठकों को मैंने जो ऊपर व्यास भाष्य लिखा उसे देखने से सम्यक् ज्ञात हो जायगा कि स्वामी ने अपने मन माना अर्थ किया है ॥

अब तुलसीराम स्वामी " तदा द्रष्टुःस्वरूपेऽवस्थानम् ॥ सूत्र १।३ का जो अर्थ करते हैं उसे ध्यान पूर्वक विचारिये "

देखिये वेदप्रकाश भाग १० संख्या १ पृ० ३-४॥ तब देखने वाले की अपने स्वरूप में स्थिति हो जाती है ॥ जब निर्विकल्प वा असंप्रज्ञात योग बन पड़ता है तो द्रष्टा को विषय ज्ञान तो बना रहता है पर अन्य विषय का नहीं किन्तु अपने आत्मा को ही आप विषय करता है ॥ इस द्रष्टा के तीन अर्थ हो सकते हैं ॥

(१) द्रष्टा-विषयों का देखने वाला चित्त अपने स्वरूप में वृत्तियों के निरोध से स्थिर हो जाता है ॥

(२) द्रष्टा-जीवात्मा की अपने स्वरूप में स्थिति हो जाती है ॥

(३) द्रष्टा-चराचर के साक्षी परमात्मा के स्वरूप (सत्ता) में स्थिरता हो जाती है ॥

आप इस पर टिप्पणी करते हैं-

यह पक्ष काम देता है। यही उत्तम पक्ष है। यही स्वामी (दयानन्द) जी ने वेद भाष्य भूमिका में लिखा है। ईश्वर की खोज में भटकने वाले प्राणियों का सहायक यही पक्ष है ॥

वक्तव्य-पाठक गणो! प्रथम तो अनुवाद कर्त्ता ने "द्रष्टुः„ के प्रथम दो अर्थ करने में कोई प्रमाण नहीं लिखा कि महाशय ने व्यास भाष्य के अनुसार वा विज्ञान भिक्षुकृत योग वार्त्तिक के अनुसार वा भोजवृत्ति के अनुसार ये अर्थ किये हैं, या किसी अन्यभाष्य के अनुसार ये अर्थ किये हैं। हां तीसरे अर्थ में स्वामिदयानन्द का नाम लिखा है पर यह नहीं बतलाया कि स्वामी दयानन्द ने कोई भाष्य योग सूत्र पर लिखा है वा नहीं॥

दूसरी बात यह है कि स्वामी दयानन्द ने योग सूत्र पर व्यासभाष्य माना है पर अर्थ अपने मनमाना किया है यह प्रतिज्ञा हानि है जैसे कि हम इस लेख के प्रथम भाग में दिखा चुके हैं॥ फिर तुलसी राम स्वामी ने भूल में भूल किई प्रथम स्वामी दयानन्द के अप्रामाणिक अर्थ को माना और द्वितीय उस अर्थ को सर्व शिरोमणि कहा यह अशुद्ध पर अशुद्ध है। उन को चाहिये कि वे स्वामी दयानन्द की भूल को मान लेवें मनुष्य से भूल हो ही जाती है। किसी अशुद्धि को पुष्ट करना दुराग्रह है। और वह मानसिक वा आत्मिक सन्निपात (पक्षपात गर्व और आलस्य) का फल है॥

देखिये स्वामी दयानन्द स्वतः अपने सत्यार्थप्र० नाम पुस्तक की भूमिका में क्या लिखते हैं ?—

"इस ग्रंथ (सत्यार्थ प्रकाश) में जो कहीं २ भूल चूक से अथवा शोधने तथा छापने में भूल चूक रह जाय उस को जानने जनाने पर जैसा वह सत्य होगा वैसा ही कर दिया जायगा„ इत्यादि पर विचार कर आर्यसमाजी कार्यवाही करें। सत्य का ग्रहण और असत्य का त्याग इस नियम को पालें और उसी के अनुसार वर्त्ताव करें॥

तीसरे योग सूत्र के प्रथम पाद के द्वितीय और चतुर्थ सूत्र और चतुर्थ पाद के अंतिम सूत्र और इन सूत्रों पर महाशय व्यासभाष्य देखें और सम्यक् विचार करें फिर निर्णय करें। उन के अनुवाद में योग दर्शन के सूत्रों पर परस्पर संगति नहीं रहती है और सांख्य के सिद्धान्त से जिसे महर्षि व्यास ने अपने भाष्य में रक्खा है विरोध होता है। गुरु मुख से वेदशास्त्र पढ़े विना ऐसे ही भ्रम हुआ करते हैं जैसे स्वामी दयानंद को हुए और अब तुलसी राम स्वामी को हो रहे हैं। काशी आदि के विद्वानों से भी प्रार्थना है कि वे भी ऐसे २ भ्रम और अशुद्धियों का मोचन और शुद्धिकर देवें या भ्रम रोगाग्रस्त आर्यसमाजी स्वतः उन से शुद्धि करालेवें आशा है कि काशी आदि के विद्वान् सत्य की प्रवृत्ति करेंगे नहीं तो कुछ काल में वेदशास्त्र का अर्थ उलटा पुलटा हो जावेगा इस में संदेह नहीं। कहिये हम फिर

स्वार्य कुमारिल भट्ट और श्री मत्स्वामी शंकराचार्य कहां से पावें अतएव फिर भी प्रार्थना है कि काशी आदि के महाशय विद्वान् अब अपनी लेखनी इन विषयों पर अवश्य ही उठावेंगे ॥

पाठक गणो ! इस लेख के प्रथम हम ने "ब्राह्मण सर्वस्व भाग ४ संख्या १-२-४ "में आर्य समाजियों से यज्ञ में पशु हिंसा है वा नहीं है ?

"वेद में मारण मोहन है वा नहीं है" इत्यादि प्रश्न किये जिन का उत्तर वे नहीं दे सकते वरन अब उत्तर देने में साहस भी नहीं होता हृदय कांप रहा है लेखनी थर्रा रही है चित्त दोलायमान हो रहा है। उन प्रश्नों में पूर्वोक्त प्रश्न योग दर्शन पर भी था मेरा प्रयोजन इन लेखों के लिखने से सत्य २ अर्थ का प्रकाश करना है किसी का मन दुखाना नहीं है। न किसी की हानि पर तात्पर्य है अब आप क्षमा कीजिये फिर हम आप को दूसरे विषयों पर लेख अर्पण कर प्रसन्न करेंगे ॥

नोट—हम फिर भी महाशय आर्यसमाजियों को दो मास का नोटिस देते हैं कि वे कृपा कर "यज्ञ में पशुवध है वा नहीं है" "वेद में मारण मोहन है वा नहीं है" इत्यादि प्रश्नों का उत्तर लिखें निर्णय करना अवश्य है यदि दो मास में उत्तर नहीं दे सकेंगे तो यह समझा जायगा कि वे पराजित हो चुके अप्रसन्न न हूजिये ॥

आप का कृपा कांक्षी; विहारीला बी० ए० शास्त्री

गंजीपुरा, जब्बलपुर, सी० पी०

सम्पादकीय सम्मति—पं० विहारीलाल जी संस्कृत में शास्त्री, अंगरेजी में बी० ए० हैं। ब्रा०स० के ग्राहक हैं। शास्त्री जी का लेख आ०समाजियों के साथ सरल कोमल रीति मित्र दृष्टि से है कि वे शास्त्र मर्यादा से विरुद्ध अपने मन माने मिथ्या अंशों का त्याग तथा सत्यांशों का ग्रहण करें असत्य का हठ छोड़दें। सो यह कहना है तो ठीक परन्तु शोचना यह है कि जिस का मत पौने सोलह आना वेदों तथा शास्त्रों से विरुद्ध तथा असत्य है वह यदि असत्य को छोड़दे तो उस के घर की सभी पूंजी जाती है फिर तु०रा० के पास रहेगा ही क्या ? । शास्त्री जी के कथनानुसार आर्यसमाजी लोग यदि अपनी एक भी भूल को सब मिल कर मान लें तो उन को सभी भूलें मानने पड़ जायं और शास्त्रों से विरुद्ध असत्य मत का ही नाम आर्यसमाज है। तब असत्य छोड़ने का सुतरां यही अर्थ निकला कि आर्यसमाजी मत को छोड़ो। तु०रा० शोचें बालू की भीत बहुत दिन खड़ी नहीं रह सकती है ॥

विवेक

एक महा दुर्गम बन है उसके मध्य में एक मार्ग निकला हुआ है। जिस पर पथिक आते जाते हैं। इस मनोहर बन को अनेक प्रकार के वृक्ष, बेलि, हरी हरी गुल्म लता शोभा का आगार बनाये हुए हैं। जो प्राणी उनकी ओर निमेषमात्र को दृष्टि फेंकता है वह दृष्टि उन्हीं में फंस जाती है। सब पथिक उन की ओर ग्रहण करने की इच्छा किये हुए चलते हैं। और ज्यों २ वे पुष्प बेलि विटपों को प्राप्त होते हैं त्यों २ पुष्पादिकों को देखने तथा स्पर्श करने की अधिक २ अभिलाषा होती जाती है। और अपने मार्ग को भूलते जाते हैं, उन सघन वन में अनेकानेक दृश्य पदार्थों पर मोहित होते हुए घूमते फिरते हैं। कोई २ तो स्मरण करते हैं कि हमारा मार्ग कहां है और कोई कोई पुष्पादिक के विहार ही में लगे हैं पर महावन की शोभा का अन्त नहीं पाते, जिस पदार्थ को देखने लगते हैं दूसरे की ओर दृष्टि करने से वह अधिक शोभायमान प्रतीत होता है, अब भ्रमित होने से उस वन से निकलने की इच्छा करते हुए जिस ओर चलते हैं उस ओर दुर्गम स्थानों ही से भेंट होती है। ऐसे वन में व्याघ्र, भालू वक्र सिंहादिक महानाद करते हुये बेलि पुष्पों के नीचे घूमते फिरते हैं, और ऐसे भयानक स्थानों में पथिकोंकोपाय यमपुर मार्ग का पथिक बनाते हैं। ऐसे घोर वन में एक राजा, जो दुःखित पथिकों को सहायता करता घोड़े पर सवार, हाथ में शस्त्र लिये हुये बन में विचरता व्याघ्रादिकों को मारता पथिकों की रक्षा करता हुआ महा सुन्दर मार्ग को पहुंचाता है। जो पथिक इस की शरण जाता है वह अवश्य ही दुःख से छूट कर आनन्द पाता है, केवल यही एक उपाय उस वन से निर्मुक्त होने का है।

वन क्या है? पथिक कौन हैं? राजा कौन है?। वन संसार है बेलि पुष्पादिक विषय के रूप, शब्द, स्पर्श, रस, गन्ध हैं। पथिक जीव है, वेदानुकूल चलना मार्ग है, अन्धकार अज्ञान है, विषयों को भोगते हुये तृप्त न होना ही पुष्पादिकों का वारम्वार स्पर्श तथा अवलोकन है। जैसे विषयों से राग करने से काम क्रोध लोभादिक उत्पन्न होते हैं और उन से पुरुष भ्रष्ट तथा नष्ट होजाता है। वैसे ही उन बेलि विटपों के नीचे सिंहादिक रहते हैं वहां प्राप्त हुये पुरुष को मार डालते हैं।

राजा विवेक है, अश्व सत्संग तथा शास्त्र विचार है। कृपाण बुद्धि है।

जिस करके कामादिक व्याघ्रों को नष्ट करता है। इस को पथिक जीव का मित्र जानो, जो ऐसे दुःख से छुटावे उसे मित्र कहते हैं। और यह अपने ही प्रयत्न से प्राप्त होता है। इस को अपना अभ्यास भी कहते हैं, जैसे पिता पुत्र को अशुभ की ओर से बरज कर शुभ की ओर लगाता है तैसे ही विचाररूपी मित्र वासना से वर्जन कर आत्मा की ओर प्रवृत्त करता है।

वह राग द्वेष रूपी अग्नि से निकाल कर समतारूपी शीतलता को उसे प्राप्त करता है। जैसे मल्लाह (केवट) नदी से तार ले जाता है वैसे ही यह मित्र भी संसाररूपी सागर से तार ले जाता है, जब विचाररूपी मित्र आता है स्वाभाविक चेष्टा निर्मल हो जाती है। दया कोमलता अभाव और अक्रोध अर्थात् क्षमा आन प्राप्त होती हैं, जैसे तिलों में तेल, फल में सुगन्ध और अग्नि में उष्णता रहती है तैसे ही विचार में शुभाचार रहते हैं यह मित्र शूरमा है। जो कोई शत्रु आता है प्रथम उस को मारता है और निजाश्रित मित्र को प्रसन्न रखता है। जिस के अन्तःकरण में विवेकरूपी मित्र आता है वह अपने परिवार को भी लाता है, स्नान, दान, तपस्या, ध्यान, ये चार उस के पुत्र हैं, स्नान तो यह है कि पवित्र रहना, यथाशक्ति दान करना, बाहर की वृत्ति को भीतर करने का नाम तप है, आत्मा की वृत्ति में चित्त लगाने का नाम ध्यान है। मुदिता उस की स्त्री है सदा प्रसन्न रहने का नाम मुदिता है। मुदितारूपी स्त्री के साथ, करुणा (दया) नाम सहचरी रहती हैं। और समतारूपी द्वारपालिनी सम्मुख खड़ी रहती है।

जब विवेक अन्तःपुर में जाता है तब सन्मुख हो कर वही समता स्थान दिखाती है और सदा संगी रहती है जिस ओर राजा देखता उस ओर समता ही दृष्टि आती है उस के दो पुत्र हैं, धैर्य्य और धर्म, जब राजा सवार हो कर चलता है तो मुदिता भी समता पर आरूढ़ हो कर राजा के साथ शत्रुओं से लड़ने जाती है। जब राजा समर में प्राप्त होता है तब धैर्य्य और धर्म मंत्री हो कर मंत्रणा करते हैं और काम क्रोध लोभादिक जो त्रिगुण वृक्ष के फल हैं समूल वृक्ष को नष्ट कर निज स्वत्व जमाते हैं, तिस से जिताश्रित मित्र (जीव) को कल्याण प्राप्त होता है अब सज्जनों को प्रणाम करते हुवे वाणी मौन निद्रा में मग्न होती है—ओ३म् शान्तिः ३

भँवर मित्र मण्डली बछरावां अवध } शिवरत्न शुक्ल स्टेशनमास्टर गौरा—जिला प्रतापगढ़

(श्रीमतुगुरवे नमः)

॥ राद्धान्त–रत्नावली ॥

(१) तत्तत्कार्य्यनिष्पत्तिनिमित्तघटनावियोजकबलवत्तरप्रत्यूहव्यूहविघातायासारसंसारसागरमज्जत्पुरुषत्वावच्छिन्नस्य श्रद्धाविशेषणविशिष्टभक्तिसाधनमुररीकृत्य कान्तस्वान्तदान्तशान्तहरिचरणशरणसद्गुरुपादारविन्दसेवनमेव श्रेयस्करं वरीवर्तीति निगमागमसिद्धान्तः ॥

(२) प्रभूतसङ्ख्यावच्छिन्नसुकृतनिवहलब्धमानुषजन्मरत्नमवाप्य श्रीजगदीश्वरभक्तिभावः कदापि विस्मृतिपथं नानुनेयः, सद्गुरुकर्णधारकृपया भक्तिनौकामाश्रित्य दुःखागारसंसारसागर*मुत्तरणीयमिति तत्त्वम् ॥

(३) अनङ्गरङ्गतरङ्गकुसङ्गसङ्गभङ्गसत्सङ्गपतङ्गसङ्गतिरेवाविद्यातमोनिराकृतौ विद्याप्रकाशप्रकाशे च स्वार्थपरार्थ सकलकृतिसंसिद्धध्यर्थं साधीयसीति रमणीयम् ॥

(४) साध्यसंसिद्धौ–परिणामापरिणामपरामर्शं साक्षात्कृत्य स्वमानसे ततो हि कार्य्यमारम्भणीयं तथासत्येव स्वार्थसिद्धिः। वैपरीत्ये च वैपरीत्यमेव फलमिति दिक्,

(५) सर्वत्र सर्वदा सर्वथा तथ्यभाषणमेव महत्त्वबीजमिति नच तदन्तरेण महत्त्वसम्भवः। भवति च जगति पराभवकारणमसत्यकथनमिति तन्निराकरणमेवेति शोभनम् ,

(६) परसुन्दरीमुखचन्द्रचन्द्रिकां प्रत्यक्षीकृत्य चञ्चलचित्तचकोरचञ्चलताचञ्चलितेन्द्रियग्रामनिरोधनमेव सर्वथा वरम्– असति च कुरङ्गमातङ्गपतङ्गभृङ्गमीनवद्दशेति निश्चेतव्यम् , (इति)

कङ्गनिवासी गौरीशङ्कर शास्त्री वैदिक पाठशाला बिलासपुर। (ज़िला शिमला)

* सागरादिति वा।

परमात्माजयति

नवीनमत समीक्षा

लगाये मन तो बस हरि से लगाये जिस का जी चाहे। झुकाये शिर तो बस हरि को झुकाये जिस का जी चाहे॥ सुनाये तो कथा हरि की सुनाये जिस का जी चाहे। जो गाये गीत तो हरि का ही गाये जिस का जी चाहे॥ अनृत वादी के अनृत को मिटाये जिसका जी चाहे। सनातन धर्म की जय जय मनाये जिस का जी चाहे॥ हुआ एक मत नया जारी फंसे हैं उस में नर नारी। उजाड़ें धर्म की क्यारी बचाये जिस का जी चाहे॥ लिखी हैं पुस्तकें हम ने नये मत के जो खंडन में। उन्हें सर्वत्र फहलाये छपाये जिस का जीचाहे॥

सत्यार्थ प्रकाश सन् १८८४ के लेख और पृष्ठांक

विजातीय भेद ईश्वर में नहीं माना है जो उस ने। रहा फिर द्वैत मत कैसे बताये जिस का जी चाहे॥ २४॥ लिखे हैं रूप दिवु धातु के जो उसने उभय पद में। उभयपदि धातु में उस को दिखाये जिस का जी चाहे॥३९॥ जो भाषा ग्रंथ सब मिथ्या हैं तो सत्यार्थ इत्यादि। सभी मिथ्या हैं मन इन से हटाये जिस का जी चाहे॥ ७१॥ नदी नक्षत्र वृक्षादि पै जिस कन्या की संज्ञा हो। निषिद्ध उस से विवाह क्यों है बताये जिस का जी चाहे॥ ८०॥ विभाग उसने ही वर्णों का लिखा है कर्म और गुण से। व्यवस्था ये समाजों में चलाये जिस का जी चाहे॥ ८८॥ जो उस ने कर्म और गुण से लिखा संतान का बदला। हमें वेदों में दिखलाये कराये जिस का जी चाहे॥ ८९॥ विवाह करते ही पत्नी को लिखा ऋतुदान का देना। कहां है शास्त्र का मत यह बताये जिस का जी चाहे॥ ९३॥ लिखा है सब मनुष्यों से करे स्वीकार नारी को। तो क्यों भंगन चमारी से घृणाये जिस का जी चाहे॥ ९७॥ विवाह स्त्री पुरुष का जब लिखा है एक वेदों में। तो है विधवा विवाह अनुचित रचाये जिस का जी चाहे॥ ११५॥ नियोग उसने बताया क्या प्रकट व्यभिचार फैलाया। ये गठड़ी पाप की शिर पर उठाये जिस का जी चाहे॥ पति ग्यारह की विधि लिखकर पतिव्रत को डुबोया है। कहां आशय है श्रुति का यह बताये जिस का जी चाहे॥ ११८॥ पति कर दूसरा प्यारी ये आज्ञा दे कै पत्नी को। किसी से पुत्र उपजाये खिलाये जिस का जी चाहे॥११८॥ पति परदेश को जाये जने घर पत्नि सुत पीछे। प्रवृत्ति धर्म की गुरु के कराये जिस का जी चाहे॥ ११९॥ भला कहीं गर्भिणी को भी दुबारा गर्भ हो-

ता है। वृथा वातें कोई झूठी बनाये जिसका जी चाहै ॥१२०॥ वचन है वह तो गीता * का जिसै वेदों का वतलाया। जो हो शक्ति तो वेदों में दिखाये जिसका जी चाहै ॥१२६॥ लिखा है नाम से मनुके कि दें संन्यासियों को धन। मनु० में श्लोक वह आधा दिखाये जिसका जी चाहै ॥ १३५ ॥ जो केवल वेद को माने करै लेख अन्य ग्रन्थों से। वह अज्ञानी है या ज्ञानी बताये जिसका जी चाहै ॥ लिखा सत्यार्थ में जो कुछ पता नहीं वेद में उसका। न माने संहिताओं में दिखाये जिसका जी चाहै ॥ दिखाये दंड के धन की व्यवस्था हमको वेदों में। विधि वलि वैश्व संध्या की बताये जिसका जी चाहै ॥१७१॥ कहां व्याख्यान वेदों में है सोलह संस्कारों का। पता उनका वहां सम्यक् लगाये जिसका जी चाहै ॥ कहें अश्मादि मूर्त्ति में लगाना चित्त का निंदित। वरन हड्डी में मन अपना लगाये जिसका जी चाहै ॥ १८८ ॥ लिखा है व्यास ने परतंत्र जीवों को श्रुति वल से। स्वतंत्र उनको मृषा कोई बताये जिसका जी चाहै ॥ १९२ ॥ अनन्त होने में भी जीवों के जो झगड़ा करै झूंठा। हमें संख्या कहीं उनकी दिखाये जिसका जी चाहै ॥ प्रथम सब से हुए ब्रह्मा लिखा यह मंत्र ब्राह्मण में। बिरुद्ध इसके अनृत कोई चलाये जिसका जी चाहै ॥ दिये हैं वेद ब्रह्मा ही को सब से पूर्व ईश्वर ने। श्रुति की व्याख्या झूठी बनाये जिसका जी चाहै ॥ २०२ ॥

कहै जो अग्नि रवि वायु हुए हैं पूर्व ब्रह्मा से। लिखा सच्छास्त्र में येही दिखाये जिसका जी चाहै ॥ २०२ ॥ लिखी † शत पथ में ब्रह्मा जी से उन तीनों की उत्पत्ति। जनक से जन्य को पहिले वताये जिसका जी चाहै ॥ ऋषि मुनियों ने ब्राह्मण मंत्र दोनों वेद माने हैं। विरुद्ध उनके मृषा बातें बनाये जिसका जी चाहै ॥ २०५॥ मृषा लिक्खा है उसने यह नहीं इतिहास वेदों में। दिखाऊं संहिता ही में वह आये जिसका जी चाहै ॥ २०५ ॥ लिखे हैं नाम ऋषि मुनियों के वेदों में प्रकट सम्यक्। वृथा प्रत्यक्ष के विपरीत गाये जिसका जी चाहै ॥ २०५ ॥ हो जिस पुस्तक में जिसका नाम पुस्तक उस से पिछला है। इसी सिद्धांन्त पर चरचा चलाये जिसका जी चाहै ॥ २०५ ॥ यजुः

* और वेदों में भी—ब्राह्मणस्य विजानतः। इत्यादि

† शतपथ काण्ड ११ सइमांल्लोंकानभितताप। तेभ्यस्तप्तेभ्यस्त्रीणि ज्योतींष्यजायन्ताग्निर्योऽयं पवते सूर्यः ॥

के भाष्य में उसने लिखा है स्वर्ण और पीतल *। ज़रा ध्यान इस तरफ़ कोई लगाये जिसका जी चाहै ॥ बना है अब भला पीतल कोई निर्णय करे इसका। हुए वेद उससे भी पिछले ये गाये जिसका जी चाहै ॥ पशु पक्षी औ-वृक्षादिक, लिखे हैं वेद में प्रायः। बस अब वेद उनसे भी पिछले बताये जिसका जी चाहै ॥ कुरु वंशी नृपों तक की है गाथा संहिताओं में। अरे कोई सत्य का निर्णय तो आवे जिसका जी चाहै ॥ प्रथम सृष्टि मनुष्यों की जो तिब्बत में वह कहता है। लिखा वेदादि में येही दिखाये जिसका जी चाहै ॥२२४॥ अथर्वण वेद की श्रुति में ध्रुवा पृथ्वी को लिक्खा है। मृषा फिर घूमना उसका बताये जिसका जी चाहै ॥ २२८ ॥ कहीं मुक्ति से लौट आना नहीं लिक्खा नहीं लिक्खा। वृथा सत्शास्त्र के प्रतिकूल गाये जिसका जी चाहै ॥ २४० ॥ रसोई का बनाना काम शूद्रों का वह लिखता है। कहार और नाई से बनवाये खाये जिसका जी चाहै॥२६३॥ मुसलमान और ईसाई बनें हैं आर्या अब तो। उन्हें पास अपने बिठलाये जिमाये जिसका जी चाहै ॥ कहां लिक्खा है शंकर की हुआ मृत्यु का विष कारण। मृषा यूं दोष जैनों को लगाये जिसका जी चाहै॥२८७॥ कथा चुंबक की भी मिथ्या लिखी है शिव के मन्दिर में। हमें प्राचीन पुस्तक में दिखाये जिस का जी चाहै॥३१९॥ लिखे हैं मन्त्र अघमर्षण के प्रायः संहिताओं में। न छूटे पाप बिन भोगे ये गाये जिस का जी चाहै ॥३२२।३१८॥ छुटें नहीं पाप बिन भोगे तो मुक्ति ही असंभव है। सकल अघ जायं मन हरि से लगाये जिस का जी चाहै ॥ प्रह्लाद अक्रूर की गाथा में जो कुछ उस ने लिक्खा है। कहीं नहीं भागवत में वह दिखाये जिस का जी चाहै॥३३३।३३४॥ लिखा है ग्रहण के निर्णय में उस ने वाक्य जो छल से। कहां है वह शिरोमणि में बताये जिस का जी चाहै ॥ ३३८ ॥ जनेऊ को तो उस ने चिन्ह विद्या ही का माना है। वृथा शिशु और अज्ञों को पिन्हाये जिस का जी चाहै ॥ ॥ ३७९ ॥ शिखा और सूत्र के त्यागी को ईसाई सदृश लिक्खा। तो क्यों लिक्खा शिखा को भी मुंडाये जिस का जी चाहै ॥ ३७९। २५८ ॥ शिखा और सूत्र दोनों ही का त्याग उस ने किया मित्रो। कहूं उस को भला क्या मैं बताये जिस का जी चाहै ॥ लिखा है वेद को जिस ने अधर्म अग्राह्य और झूंठा। उसे आचार्य की पगड़ी बंधाये जिस का जी चाहै ॥ ३८२ ॥ मृतक के दाह की विधि जो बताई उस ने वेदों की। कहां वेदों में है वह विधि दिखाये

* देखो यजुर्वेद भाष्य अध्याय १८ मंत्र १३ का पदार्थ ॥

जिस का जी चाहे ॥ ४७७ ॥ * करण का सूर्य से होना असम्भव जो समझता हो। वह भ्रम महा भाष्य से अपना मिटाये जिस का जी चाहे ॥ ४९७ ॥ बिना वेदों की आज्ञा के जो पानी ही नहीं पीते। करें वे वेद ही को सिद्ध आये जिस का जी चाहे ॥ न माने वेदशाखाओं को जो हठ और दुराग्रह से। वह शाखा भिन्न वेद अब अन्य लाये जिस का जी चाहे॥ ५८७ ॥ जिन्हें माना है वेद उस ने वह शाखा हैं प्रकट चारों। बस अब उन से भी हाथ अपना उठाये जिस का जी चाहे ॥ कहैं विद्वान् ही को देव है यह कल्पना झूंठी। चलेगा कब तक अनृत चलाये जिस का जी चाहे ॥ ५८८ ॥ मनुष्यों से पृथक् देवों का वर्णन वेद में आया। बनावट बन नहीं सकती बनाये जिस का जी चाहे ॥ न खाते हैं न पीते हैं ये गुण अद्भुत हैं देवों में। है विद्वानों में कौन ऐसा बताये जिस का जी चाहे॥ न दीखें वे मनुष्यों को जो यज्ञादि में जाते हैं। जो विद्वानों में हो ये गुण दिखाये जिस का चाहे ॥ अनेकों देह क्षण भर में करें हैं देव ही धारण। ये विद्वानों की शक्ति है? बताये जिस का जी चाहे॥ निरुक्त और व्यास सूत्रों में है व्याख्या पूर्ण देवों की। भ्रम अपना उन को पढ़ कर अब मिटाये जिस का जी चाहे ॥ नरक और स्वर्ग से लोकों को भी उस ने नहीं माना। दिखाऊं शास्त्र में दोनों वह आये जिस का जी चाहे ॥५९७॥ असत् से चित्त को निश दिन हटाये जिस का जी चाहे। सदा सत्य ग्रहण में मन लगाये जिस का जी चा है ॥ छली का छल प्रकट सब को सुनाये जिस का जी चाहे। छुपाये तो सुयश अपना छुपाये जिस का जी चाहे ॥ सदा तांबूल से मुख को रचाये जिस का जी चाहे। दुशाले ओढ़े संन्यासी कहाये जिस का जी चाहे ॥ रजिस्टरी अपने पुस्तक पर कराये जिस का जी चाहे ॥ चतुर्गुण मूल्य रख कर धन कमाये जिस का जी चाहे ॥ यजुः का भाष्य भी उस ने किया प्रतिकूल शतपथ के। है उस की व्याख्या मिथ्या मिलाये जिस का जी चाहे ॥

जगन्नाथदास मुरादाबाद

शेष आगे–

* देखो महाभाष्य, अध्याय ४ पाद १ का वार्तिक–"सूर्याद्देवतायां चाब् वक्तव्यः। सूर्यस्य स्त्री सूर्या। देवतायामिति किमर्थम्। सूरी„। सिद्धान्तकौमुदी में यह है कि "सूर्याद्देवतायां चाब् वाच्यः। सूर्यस्य स्त्री देवता सूर्या। देवतायां किम्। सूरी कुन्ती मानुषीयम्। कोष में भी सूरी नाम कुंती ही का लिखा है॥

श्रीयुत महाशय सामवेदभाष्यकार पण्डित तुलसीराम जी नमस्ते । आप के मासिकपत्र अंक ३ के जीवोत्क्रान्ति विषयिक लेख को देख कर मेरा चित्त बहुत प्रसन्न हुआ । आप कृपा कर ऐसा लेख हमेशा लिखा करें और आप साथ ही इस को भी विचार लें कि जो पक्षपाती होते हैं उन को वेदों के भाष्य करने का कदापि (पक्षपातिनामनधिकारः) अधिकार नहीं हो सकता। आपने दर्शनों की अभिज्ञता अन्तर्यामी रूप से जानी होगी । जब कि आप ऐसे अनुभवी हैं फिर न मालूम आप को वायु के साकार होने से कैसे भ्रम हो गया? । आप को इस भ्रम ने अगाड़ी नहीं चलने दिया कि जो दृष्ट नहीं होते उन्हें साकार कैसे मानें । आप के तो विचित्र सिद्धान्त में जो पदार्थ आप के दोनों नेत्रों से (दृष्टिपथमृच्छतीति साकारः) दीख पड़े वही साकार है । जब कि परमाणु और मन के दृष्ट न होने पर भी (न परमाणुवन्नित्यत्वम्) (तदभावादणुमनः) उक्त प्रमाण से साकार माने जाते हैं फिर आप का दृष्ट साकारी सिद्धान्त कैसे सिद्धान्त हो सकता है ?। यों तो आप को एक नेत्र मूंदने पर पृथ्वी जल तेज वायु इत्यादि सर्व ही पदार्थ निराकार प्रतीत होंगे। बस तो निराकार और साकार की सिद्धि में आप का एक सव्य नेत्र ही प्रमाण रहा आपने अभी वैशेषिक दर्शन को नहीं सुना यदि श्रवण करते तो आप ऐसी विचित्र भ्रान्ति में न पड़ते जब कि (स्पर्शश्चवायोः) (क्रियावत्वाद्गुणवत्वाच्च) (वायोर्वायुसंमूर्च्छनंनानात्वलिङ्गम्) (अग्नेरूर्ध्वज्वलनम्) (वायोस्तिर्यक्पवनम्) इत्यादि सूत्रों के प्रमाण से अथवा प्रत्यक्ष स्पर्शभाव से वायु के क्रियावान् गतिमान् संमूर्च्छन वा साकार अनेक रूप होने सिद्ध हैं क्योंकि सक्रिय द्रव्य (दिक्कालाकाशञ्च क्रियावद्वैधर्म्यान्निष्क्रियाणि) इस प्रमाण से निराकार कदापि नहीं हो सकते। इस में व्याघात दोष आता है। इस कथन से आप प्रतिज्ञा विरोध नामी निग्रहस्थान को प्राप्त होते हैं । आप को मुनासिब है कि जैसे आकाश के निराकार होने में शास्त्रों में अनेक सूत्र कहे हैं। ऐसे आप भी वायु के निराकार होने में किसी शास्त्र वा उपनिषद् का प्रमाण देवें । इति ।

श्यामलाल वैश्य वल्लभगढ़

धर्म की जय

जिस कुरुक्षेत्र की पवित्र भूमि में भगवान् भीष्म जी ने शरशय्या पर पौढ़कर धर्मावतार महाराज युधिष्ठिर को धर्म का उपदेश किया था । पाठक गण ! इसी पवित्र भूमि में एक ओर कौरवदल एक ओर पाण्डवदल हाथ में तलवार लिये हुए एक दूसरे के प्राण लेने को खड़ा हुआ था ऐसे भयङ्कर समय में भगवान् श्यामसुन्दर ने अर्जुन को श्रीमुख से गीता का उपदेश दिया

था। हा शोक ! इसी पवित्र भूमि के कर्नाल जिलान्तरगंत शालवन ग्राम में कई मास से दयानन्दियों ने मूर्त्तिपूजा खण्डन विधवा विवाह आदि विषयों का उपदेश करके दश बारह संस्कृतानभिज्ञ पुरुषों को बहका कर २-३-०६ से ४-३-०६ तक आर्यसमाज का उत्सव करना निश्चय किया। इस धर्मनाशक अत्याचार को यहां के सनातनधर्मी सहन न कर सके तुरन्त पानीपत जाकर पं० भजन लाल शर्मा मन्त्री स० ध० से प्रार्थना की कि आप अति शीघ्र विद्वानों को तार दीजिये और उत्सव का प्रबन्ध कीजिये। उक्त मन्त्री जी ने विद्वानों के बुलाने के लिये अनेक नगरों को तार दिये और श्री भा० ध० मं० को भी पत्र और दो तार दिये महामण्डल ने श्रीमान् महोपदेशक पं० बाबूराम शास्त्री तथा पीलीभीत निवासी श्री पं० रामचन्द्रजी को भेजा और कुरुक्षेत्र से श्री युक्त पं० गरुड़ध्वज शास्त्री जी और मुरादाबाद से श्रीयुक्त पं० हरिहर नाथ शास्त्री तथा पं० श्यामसुन्दर जी और धामपुर से पं० बिहारी लाल अपनी भजन मण्डली समेत पधारे उक्त विद्वानों ने ५ दिवस तक अपनी ऐसी मधुर और ललित वक्तृताओं से हमें तृप्त किया कि जिन वक्तृताओं को सुनकर आबाल वृद्ध वनिता सभी मोहित हो जाते थे और सत्य स० ध० की जय २ कार बोलते हुए कण्ठ गद् गद् हो जाते थे हमारे विद्वानों की परम प्रभाव शाली वक्तृताओं को सुनकर दयानन्दियों के छक्के छूट गये और अपने विरुद्ध मनुष्यों पर प्रभाव पड़ता देखकर काग़ज़ी घोड़े दौड़ाना प्रारम्भ किया। अन्त तो गत्वा पत्रालाप करने से शास्त्रार्थ होना निश्चय न हुआ तब यवन कुलभूषण निष्पक्षपात थानेदार साहब असंधने जो प्रबन्ध करने के लिये पधारे थे हमारे विद्वानों को और आर्यसमाज के पण्डितों को शास्त्रार्थ के नियम तै करने को बुलाया हमारे विद्वानों ने सनातनधर्म की सत्यता स्मरण करके आर्यसमाज के सम्पूर्ण नियमों को स्वीकार किया और निश्चय हो गया कि प्रातःकाल श्राद्ध विषय पर शास्त्रार्थ होगा। आर्यसमाज के पण्डित अपनी ढोल की पोल समझकर उसी दिन पलायमान हो गये और हमारे विद्वानों ने आर्यसमाज के पण्डितों को न आता देखकर शास्त्रार्थ के समय में अपनी प्रभावशाली वक्तृतायें देना प्रारम्भ किया। उन वक्तृताओं का यह प्रभाव हुआ कि आर्यसमाज के प्रधान विजय सिंह आदि कई मनुष्यों ने आ०स० मत को ढोल की पोल समझकर सत्य स० ध० की शरण ली इस ग्राम में इतने विद्वानों का पधारना और इस प्रकार धर्म की जय होना यह सब श्रीमान् पं० भजनलाल शर्मा मन्त्री स०ध० पानीपत के उद्योग का फल है हम मन्त्री जी को कोटिशः धन्यवाद प्रदान करते हैं ॥

मन्त्री स० ध० सभा-पं० सोहनलाल सालवन जि० कर्नाल

जिला बारहबंकी (अवध) हर्ष समाचार ॥

यहां पर श्री ६ स्वामी बालराम जी महाराज "भारतमार्तण्ड" के "गुरुमण्डल" का पवित्र आगमन हुआ जिस के अधिष्ठाता अब श्री ६ स्वामी आत्मस्वरूप जी महाराज हैं उक्त गुरुमण्डल अधिष्ठाता श्री ६ स्वामी जी के अनेक व्याख्यान साधारण धर्म विषयों पर हुए। दयानन्दियों की सभा यहां दो वर्ष से है उन के विरुद्ध जब सनातनधर्म के व्याख्यान होने लगे तो उन के मन्त्री ने नोटिस दिया कि शास्त्रार्थ करना चाहिये जिस पर गुरुमण्डल के मन्त्री ने नियम बनाकर मन्त्री आर्यसमाज के पास भेजे परन्तु वह नियम अब तक तै नहीं हुए हैं और दयानन्दी गण उन नियमों को नहीं स्वीकार करते हैं किन्तु अपने नियम पेश करते हैं मध्यस्थ डाक्टर घीवो साहब तै हुए थे लेकिन नियम न तै होने से शास्त्रार्थ दयानन्दियों को मंजूर न हुआ प्रत्यक्ष फल यह हुआ कि परमात्मा की परमकृपा से व "श्रीगुरु मण्डल" की सहायता से इस छोटे शहर में "सनातनधर्म सभा" की ता० २५ मार्च सन् १९०६ ई० को बड़े धूमधाम से स्थापना हुई। सनातनधर्म के उपदेशक महापुरुषों से प्रार्थना है कि इस छोटे नगर में आकर कभी २ अपने पुण्य व्याख्यानों द्वारा नगर निवासियों को कृतार्थ किया करें ॥

मृत्युञ्जय बख्श श्रीवास्तव उपमन्त्री-बाराबंकी

ता० ७ अप्रैल सन् १९०६ ई०

निवेदन

१-मैंने पं० तुलसीराम जी के पास खत गेर कर भी पूछा था और अब भी निवेदन करता हूं कई प्रश्नों के उत्तर दे कर स्वामी जी कृतार्थ करेंगे।

२- आप जिस वक्त बालक को यज्ञोपवीत करावो गे उस वक्त उसका कौनसा वर्ण रक्खोगे।

३-आप वर्णव्यवस्था कर्म से मानते हो तो जाटनी के साथ ब्राह्मणविवाह क्यों नहीं करा लेता।

४-आप दयानन्द के लेख को मानते हो या नहीं यदि मानते हो तो दयानन्द ने आठ गप्प मानी हैं उन में श्राद्ध नहीं तो आप श्राद्ध के क्यों विरोधी हैं।

५-और आप के अनुयायी ने अबदुलगफ़ूर को यज्ञोपवीत किस वेद के अनुसार दिया है।

६-जाट, सुनार, लुहार, जुलाहा आदि सब क्षत्री बना दिये तो शूद्र वा वर्णसंकर कौन हैं ? ॥

पं० रामेश्वरदत्त शर्म्मा सनातनधर्मवर्द्धनी बालसभापति ॥

समाचार

" वृन्दावन में रामानुज पुस्तकालय "

यह पुस्तकालय सं० १९५७ चैत्र कृष्ण प्रतिपत् को स्थापित हुआ है। पं० लक्ष्मणाचार्य जी शास्त्री इस के स्थापक हैं इस पुस्तकालय में दक्षिणादि सब देशों के अक्षरों में सब शास्त्रों के सब मतों के संस्कृत तथा भाषा में अनेकन पुस्तक हैं। अखबार तथा मासिकपत्र भी कई एक आते हैं यहां पर सब जिज्ञासु जन पुस्तकादि वांचते हैं नियमानुसार पुस्तकों को घर में भी मगा सकते हैं अनेक सज्जन यहां पुस्तक भेजते हैं सो लोकोपकारार्थ स्थापित की जाती हैं अब सूचना की जाती है कि जिन महाशयों को किसी भी पुस्तक का प्रकाश लोक में करना हो या कोई पुस्तक अधिक व्यर्थ रक्खी हो तो लोकहितार्थ इस पते पर भेजें ॥

पता—पं० लक्ष्मणाचार्य रामानुज पुस्तकालय वृन्दावन (मथुरा)

इटावा पुराना शहर करनपुरा ॥

जैन मन्दिर में विदेशी खांड़ के वारे में सभा हुई उस में श्रीमान् अवस्थी वालगोविन्द जी। तथा मन्त्री जैन सभा चन्द्रसेन जी के बड़े प्रभावशाली व्याख्यान हुये जिन का लोगों के दिल पर ऐसा असर पड़ा कि सब ने विदेशी खांड़ त्यागने की अपने इष्ट देव को साक्षी देकर और जैनी भाईयों ने श्रीठाकुर जी ! के सामने खड़े हो २ कर प्रतिज्ञा की कि आज से न तो विलायती खांड़ हम खायंगे और न किसी के घर गलाने जायंगे और न अपनी दुकान में गलायंगे और न बेचेंगे और कई एक हलवाई पहिले भी प्रतिज्ञा कर चुके थे उन की प्रतिज्ञा भंग होना इस सभा में सावित हुआ जिस के दंड के रुपये लिये गये और श्रीमन्दिर जी में जमा किये गये और आइन्दे के तांई ये निश्चय हुआ कि अब ऐसा करेंगे तो एक साल के लिये विरादरी से खारिज किये जायंगे सभा समाप्त हुई और उस के प्रातःकाल ही सब हलवाइयों की दुकानें देखीं गईं जिस में विलायती खांड़ का मेल सावित हुआ उन की सब मिठाई तुलवा कर लुटवा दी गई बूरा वगैरह सबीलों पर भिजवा दिया गया इस का सब रुपया साहूकार लाला शिवनारायण के यहां से मिला ॥ ह० भगवतीदत्त मिश्र

इटावा नया शहर कटरा सेवाकली में फागुन कृष्ण २ द्वितीया ता० ११ फरवरी सन् १९०६ ई० रविवार को कुछ धर्मात्मा पुरुषों के अनुरोध से सभा हुई प्रथम विदेशी खांड़ हिन्दू धर्म नाम की पुस्तक लाला रामनारायण बु-